शीराज़ा

हिन्दी

जे० एंड० के०
अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़
जम्मू

द्विमासिक

शीराज़ा

हिन्दी

[illegible]

द्विमासिक

शीराज़ा

हिन्दी

वर्ष : 34 अंक : 1 अप्रैल मई 1998

प्रमुख संपादक :

बलवंत ठाकुर

संपादक :

डॉ० उषा व्यास

सम्पर्क : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जे०एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180001

फोन : 579576 : 577643

❄ मूल्य : 2 रुपये

❄ वार्षिक : 10 रुपये

इस अंक में

आलेख

कृति आकलन

स्मरण

कवितायें

ऐतिहासिक कथा

कहानियां

भाषांतर

संपादकीय

साहित्य का केन्द्र बिन्दु है लोकमंगल। जहां अमंगल की भावना है वहां साहित्य नहीं है।

कीरति भनति भूरि भल सोई।
सुरसरि सम सब कंह हित होई॥

तुलसी की यह उक्ति जनकल्याण की भावना से ही उत्प्रेरित है। साहित्य भी गंगा की तरह सभी का हितकर प्रवाहमय और पवित्र है। उसी की भांति वह धरित्री को श्रृंगारित करता और सार्थक बनाता है।

प्रकृति साहित्यकी आत्मा है। अतएव उसका अपनी मिट्टी से सम्पृक्त होना उसकी अनिवार्यता भी है और विवशता भी। प्रजापति के कुंभ की भांति गुरु शिष्य की परम्परा हमें प्रकृति के निकट ले जाती है।

गुरु कुम्हार सिख कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दे बाहर वाहै चौट॥

कबीर के इस कथन जैसे संस्कारों से दीक्षित मनुष्य किसी भी प्रकार के दोष अथवा खोट से प्रायः मुक्त रहता है। छल-कपट-द्वेष जैसे प्रपंचों से दूर वह परपीड़ा को सहज अनुभव कर सकने में समर्थ होता है। प्रसंगवश . . .

महावट की एक घोर अंधेरी रात। धारासार मेंह और जल-थल। छलछलाती रिसती हुई सृष्टि। ऐसे में एक नन्हा कीट अपने छोटे से बिल में पानी भर जाने से डूब-उतरा रहा था। किसी तरह तैरता हुआ वह बारी-बारी वन के सभी वृक्षों के पास शरण देने की प्रार्थना करने गया। परन्तु कोई वृक्ष तो क्या बरगद के पेड़ तक ने भी उसकी सहायता कर पाने में अपनी असमर्थता जताई।

बांस यह सब देख कर दुःखी हुआ और बोला, भईया, मेरा तो सिर्फ तना ही तना है जहां चाहो, बैठकर रात बिता सकते हो। कीड़ा प्राण-संकट में था झट बांस की बात मान गया और तने पर चढ़ कर उसे कुरेदते काटते हुए बैठने भर की सूराखनुमा जगह बनाने लगा। इस तरह पानी के चढ़ते-चढ़ते कई सूराख बनते चले गये पर बांस ने उफ़ तक न की। आखिर उसने पूछा भईया, कीट! सुख से तो हो?!

—ठीक तो है भाई! पर पानी है कि चढ़ा आता है क्या करूं?

— तुम कुछ फासले पर कहीं ऊपर छेद बनाओ, तो सही रहेगा।

कीट ने ऐसा ही किया। और वहां बैठकर चैन से रात बिताई। भोर हुई तो आसमान निर्मल था। वर्षा थम गयी थी और सर्वत्र धूप का झक उजाला था। बांस की छलनी, छलनी देह देखकर कीट और भी दुखी हो गया।

—मित्र! मुझे क्षमा करना, मैंने स्वार्थवश तुम्हें कितने कष्ट में डाल दिया।

—अरे नहीं, यह तो मेरा कर्तव्य था। शरणागत मित्र की रक्षा करने में समर्थ होकर मैं सचमुच अति प्रसन्न हूं।

—भाई, तुम्हारे इस परोपकार के लिए मैं तो क्या सारा संसार तुम्हें याद रखेगा। कहकर कीट उड़ गया।

ग्रीष्म की एक सांझ को उधर से भेड़ बकरियों के रेवड़ के साथ गुजरते हुए एक चरवाहे ने जंगल में विचित्र सा एक अबूझ संगीत सुना। वह ढलान से उतरा और वन में घूमने लगा। तब देखा कि बांस के छेदों में सनसनाती आर-पार होती हवा से सुमधुर गूंज पैदा हो रही है। चरवाहे ने बांस की पोर काट ली। उसके बिंधे हुए टुकड़े को जब होंठो से लगाया तो उसमें से प्रेम-उपकार की एक अनन्य स्वर माधुरी फूट पड़ी। और इस तरह बांसुरी का जन्म हुआ।

मलूका सोईपीर है जो जाने पर पीर।

जो पर-पीर न जानई सो काफिर बेपीर।।

बांस ने पीर-परायी जानी थी। इसीलिये उसे अमरता मिली। पर दुखकातर मनुष्य तो क्या सृष्टि का कोई भी प्राणवंत अहित नहीं करना चाहता। उसे तो वनस्पति तक की पीड़ा का भी भान रहता है। कहना न होगा कि चराचर जगत के प्रति मैत्री का यह विस्तार ही साहित्य का मूल लक्ष्य है।

हमारे यहां से प्रकाशित शीराज़ा के स्वतंत्रता स्वर्ण जयन्ती विशेषांक को लेखकों और पाठकों ने बहुत चाहा और सराहा है। वस्तुतः यह उनके अपने ही सहयोग एवं स्नेह का प्रतिबिम्ब है। जो अंक की सार्थकता को रेखांकित करता है। भविष्य में भी इसी आशा और विश्वास के साथ अब यह अंक हम आपके लिये प्रस्तुत कर रहे हैं।

—उषा व्यास



आलेख

डॉ० धर्मवीर भारती का कविता-पुरुष

❑ निर्मला जोशी

नई कविता से पूर्व कालांतर तक जो कवि गीत-धारा से जुड़े रहे उनमें श्री नरेश मेहता, स्व० शमशेर बहादुर सिंह के नाम प्रमुखतः लिये जाते हैं। डॉ० धर्मवीर भारती की कुछ कविता-कृतियों में रागात्मकता और गीति-तत्त्व की छुअन हे जैसे उनकी कविता-कृति ठंडा लोहा की रचनायें। स्व० डॉ० भारती का नाम आधुनिक कविता के शिविर में उस दिन से लिया जाने लगा जब स्व० अज्ञेय के द्वारा संपादित तार-सप्तक-दो में उनकी रचनायें सम्मिलित की गईं। वास्तव में उनकी समकालीन पीढ़ी के अनेक कवि तार-सप्तक-दो और अगले सप्तकों में आते गये। परन्तु, डॉ० भारती का रचनाकार विविध-आयामी और बहुमुखी प्रतिभा का धनी रहा। जितना उनका गद्य-लेखन उपन्यास, कहानी, निबंध और यात्रा-वृत्तांत उल्लेखनीय रहा उतना ही श्रेष्ठ सृजन उनका कविता की दृष्टि से भी रहा। डॉ० भारती ने बाईस कृतियां हिन्दी-जगत को सौंपी। 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवां घोड़ा' जहां औपन्यासिक धरातल पर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर चुके हैं वहीं 'अंधा युग', 'सान गीत वर्ष' और 'ठंडा लोहा' के अतिरिक्त कृष्ण के प्रणय प्रसंग पर लिखी गई "कनु प्रिया" ; जैसी अनूठी काव्य-कृतियां हिन्दी की धरोहर हैं।

अपनी लंबी सृजन-यात्रा में डॉ० भारती ने जो कुछ रचा, वह उनकी एक समय की संघर्ष-यात्रा का सुखद पड़ाव भी कहा जायेगा। क्योंकि कविता हो या गद्य डॉ० भारती ने विषय का चयन इतनी बारीकी से किया कि सृजन की मौलिकता को अनायास ही समीक्षकों—आलोचकों ने सराहा। साहित्य की कोई भी विधा हो डॉ० भारती के विचार मौलिक ही हुआ करते थे जैसे उन्होंने 'तार सप्तक" में कविता के बारे में कहा था—"कविता का मुख्य कार्य आज के युग में रूढ़ अर्थों में रसोद्रेक मात्र न रहकर प्रभाव डालना रह गया हे। देखें कि उनकी ठंडा लोहा कविता-कृति में उनकी निजी संवेदनायें किस पड़ाव तक पहुंच गई हैं—

पूजा-सा तुम्हारा रूप/जी सकूंगा/सौ जन्म अंधियारियों में/ यदि मुझे मिलती रहे/काले तमस की छांव में/ज्योति की यह एक अतिपावन घड़ी/प्रार्थना में अनदेखी कड़ी . . .

यद्यपि डॉ० भारती की इस कविता का प्रारूप और चित्रण नई कविता के समीप हे किन्तु, सौन्दर्य को जिस तरह उन्होंने चाहा है उससे अतिपावन घड़ी और अनदेखी कड़ी ने इस रचना में रागात्मकता को रचा हे। अन्यथा भारती जी की यह कविता उपरोक्त कविता से कहां साम्य रखती हे—

मुझे तो वासना का/विष हमेशा बन गया अमृत/बशर्तें वासना भी हो/तुम्हारे रूप से आबाद/मेरी जिन्दगी बरबाद . . .

वास्तव में ये कवितायें मांसल कवितायें कहीं जा सकती हैं। और जब-जब डॉ०

भारती के रचना-धर्म तथा कविता-कर्म की पड़ताल की जाती है-तब कुछ सच्चाइया प्रकट होती हैं। ठंडा लोहा में उनकी कविताओं के विविध रंग-रूप देखने में आते हैं। परन्तु, अपने काव्य-पुरुष का निजत्व बाह्य-जगंत पर आरुढ़ करने में डा० भारती अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हैं जैसे—

थकन से निराश/तुझ से हो गई/इसी ध्वंस में मूर्च्छित सी पड़ी हो/नई जिन्दगी क्या पता/सृजन की थकन भूल जा देवता . . . .

सही अर्थों में डा० भारती ने कविता को विभिन्न प्रकार से जिया था। उन्होंने अनेक रचनायें आत्म-केन्द्रित होकर कीं किन्तु, वे समूह की बात भी करते रहे। डा० भारती की निजी पीड़ा और संवेदना किस तरह समूह की बन जाती है-इसके अनेक उदाहरण उनकी प्रसिद्ध कृति सात गीत वर्ष में संकलित है। वर्ष 1951 से 58 तक सात वर्षों में उन्होंने जो रचनायें कीं वे सात गीत वर्ष में हैं इन रचनाओं ने यही नाम धर लिया। यद्यपि, इन रचनाओं का स्वरूप छांदिक नहीं है-किन्तु इनमें गीत जैसी रागात्मकता सुनाई देती है। वे अपने काव्य-पुरुष को बांधते हुए वह कहते हैं-

"मैं रथ का टूटा पहिया हूं/लेकिन मुझे फेंको मत/इतिहास की सामूहिक गति/सहसा झूठी पड़ जाने पर/क्या जाने/सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले . . .

इस रचना में डा० भारती भले ही नैराश्य में बंध गये हों किन्तु, परिणति के प्रति उनका विश्वास अडिग रहा है। और शायद इसकी पुष्टि में वह सात गीत वर्ष में कहते हैं-

सुनो मेरे मन हारो मत/दूर कहीं लोग अभी जीवित हैं/यात्रायें करते हैं/मंजिल है उनकी . . .

इसमें दो मत नहीं है कि ठंडा लोहा, अंधा युग, सात गीत वर्ष और सपना अभी भी-में डा० धर्मवीर भारती की कविता का शिल्प और कथ्य विविधता लिये हुए है और इसलिये उनका कवि सबसे अलग मुकाम पर दिखाई देता है। अनेक कविताओं में उन्होंने जीवन को कई रूपों में देखा है और जब वह जीवन की अप्रियता का आभास दूसरों के जीवन से करते हैं तब भी उनका रचनाकार हारता नहीं और इस कविता का प्रस्फुटन अनायास ही हो जाता है-

"सबका जीवन है भार/और सब जीते हैं/बेचैन न हो/यह दर्द अभी कुछ गहरे और उतरता है/फिर एक ज्योति मिल जाती है . . . ।

डा० धर्मवीर भारती के कविता संसार से गुजरते हुए ऐसा लगता है कि हम जीवन को विश्लेषित करने वाले किसी शक्ति-पुंज से वार्तालाप कर रहे हैं। उन्होंने प्रणय से युक्त जिन रचनाओं का सृजन किया है-उनके संदर्भ में उनके विचार कुछ इस प्रकार हैं-ठंडा लोहा में वे कहते हैं-

"कैशोर्यावस्था की प्रणय रूपा शक्ति और आकुल निराशा से पावन आत्म समर्पणमयी वैष्णव-भावना और उसके माध्यम से अपने बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भाव-भूमि मेरी इस छंद यात्रा के मोड़ रहे हैं।"

देखा जाए तो डा० भारती ने कविता और गद्य को भाषा के स्तर पर एक नया मुहावरा दिया। उनकी कविता यात्रा में केवल कविता ही उनकी सहचरी रही है। यही क्या कम है कि भारती जी ने रचना को अत्यन्त असाधारण ढंग से जिया। उनकी अनेक रचनायें समाज और विभिन्न वर्गों से जुड़ी रहीं इसलिये वर्ग-संघर्ष को अभिव्यक्त करने की उनकी क्षमता अद्भुत रही है। अपनी जन्म-भूमि इलाहाबाद से लेकर महानगरी मुम्बई तक की यात्रा में वह अपने आयाम जीते रहे हैं। उनके रचनाकार की स्वतंत्र-चेतना गद्य और पद्य में समान रूप से देखी जा सकती है। इसमें दो मत नहीं है कि सृजन के प्रति गहरी आस्था को उन्होंने स्वीकार किया था इसलिये उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रणय-प्रसंग को मुखरित करने वाली काव्य कृति कनुप्रिया में जो कहा है उसकी अंतिम पंक्तियां नया विश्वास जगाती हैं-

"और लो/वह आधी रात का प्रलय शून्य सन्नाटा/फिर/कांपते हुए गुलाबी जिस्मों/गुनगुने स्पर्शों/कसती हुई बांहों/अस्फुट सीतकारों/गहरी सौरभ भरी उसांसों/और अन्त में एक सार्थक शिथिल मौन से/आबाद हो जाता है/रचना की तरह/सृष्टि की तरह. . .

डा० भारती कब-क्या कविता में कह देते हैं-यह गहराई में जाने पर ही ज्ञात होता है। इस कला में वह एक निष्णात कविता-पुरुष थे। इसलिये आज की कविता में उनका रचनाकार अपने पूरे सामर्थ्य और सत्ता के साथ मोजूद है।

○

'अनुभव के आकाश में चांद' और लीलाधर जगूड़ी

❑ राजकुमार कुम्भज

समकालीन हिन्दी कविता के एक भिन्न व खास उपनिवेश साबित हो चुके लीलाधर जगूड़ी को उनकी कविता-पुस्तक 'अनुभव के आकाश में चांद' पर वर्ष 1997 का साहित्य आकादमी पुरस्कार दिए जाने से हिन्दी साहित्य समाज में पर्याप्त हलचल है। समकालीन सम्मानों की श्रृंखला में साहित्य अकादमी द्वारा प्रदान किया जाने वाला यह पुरस्कार स्वं अर्जित साख के लिए भी अब अपनी महत्वपूर्ण पहचान बना चुका है।

1 जुलाई 1944 को उत्तर प्रदेश के टिहरी जिला ग्राम धंगण में जन्म लेने वाले लीलाधर जगूड़ी की पहली कविता-पुस्तक "शंखमुखी शिखरों पर" सन् 1964 में प्रकाशित हुई थी। अपनी पहली किताब आने से समय कवि लीलाधर जगूड़ी की उम्र मात्र बीस बरस ही थी। सन् 1967 में जब उनकी दूसरी कविता पुस्तक "नाटक जारी है" प्रकाशित होकर आई, तो तब, उनकी इस कृति ने उन्हें न सिर्फ समकालीन हिन्दी कविता का बहुचर्चित कवि बना दिया, बल्कि वे अपनी रचनात्मक दृढ़ता के बेहतर तथा स्थापित कवि भी करार दिए गए। उसके बाद 'इस यात्रा में' (1973), 'रात अब भी मौजूद है' (1975), 'बची हुई पृथ्वी' (1977), 'घबराए हुए शब्द' (1981), 'भय भी शक्ति देता है' (1991), 'अनुभव के आकाश में चांद' (1994) तथा वर्ष 1995 में एक अन्य कविता पुस्तक 'महाकाव्य के बिना' प्रकाशित हुई। जगूड़ी की इन तमाम कविता-पुस्तकों को हिन्दी कविता संसार ने व्यापक सम्मान दिया। 'महाकाव्य के बिना लीलाधर जगूड़ी की एक ऐसी कविता पुस्तक है जिसमें उन्होंने अपनी कुछ लंबी कविताओं के माध्यम से लगभग आधी सदी के समय समाज और समकालीन सभ्यता का आख्यान दिया है। यह मात्र व्याख्यान नहीं है कि अपने पास-पड़ोस पर कोरी टिप्पणियां अथवा ब्यौरे देते हुए किसी काल्पनिक उत्तर आधुनिककल्प की तरफ लपक लो। वे अपने आस-पास की पीड़ादायक गद्यगाथा के लिए एक ऐसी भाषा और एक ऐसी मुद्रा ले आते हैं कि जिसमें अनुभव की अंतर्सूत्रता बखूबी दिखाई दे जाती है। यह अनुभव गाथा, अनुभव के आकाश में चांद से आगे की करुणा है।

क्या यह कहा जाना आप्रासंगिक नहीं हैं कि यदि "महाकाव्य के बिना' में लीलाधर जगूड़ी ने एक नए मनु की 'मनुस्मृति' लिखने का दुःसाहस दिखाया है तो अनुभव के आकाश में चांद एक अति भिन्न भाषा एक अति संपन्न-संस्कार और एक अति संवेदनशील काव्य-परंपरा का कदाचित महत्वपूर्ण तथा रचनात्मक साहस है? भारतीय मनुष्य का संघर्ष कभी सौन्दर्यहीन नहीं है, वह अपने समय के सौन्दर्य और संघर्ष में अपनी समस्त मानवीय संवेदनाओं सहित सदैव उपस्थित है, जगूड़ी ने निरन्तर प्रमाणित किया है कि जारी काव्य-संस्कार का ध्वंस करते हुए परम्परा के पुनराविष्कार की प्रक्रिया के मार्फ़त भाषा की सक्रियता से नया व जरूरी हस्तक्षेप किया जा सकता है। यह अनिवार्य नहीं है कि इस सक्रिय-हस्तक्षेप के लिए किसी वाद या विचारधारा से जुड़ा जाए और यह भी अनिवार्य नही

कि परम्परा के प्रक्षेपास्त्रों का अतिक्रमण नहीं किया जाए वैसे भी देखा जाए तो जगूड़ी प्रतिपक्ष के कवि अधिक है।

क्या यह विस्मयपूर्ण नहीं है कि जिस जगूड़ी की पहली कविता-पुस्तक अपनी उम्र के बीसवें पड़ाव पर आ गई थी, वह ग्यारह बरस की आयु में घर से भाग गया था? खानाबदोश जिन्दगी जीने वाला लीलाधर जगूड़ी एक कड़े अनुशासन वाले संगठन भारतीय सेना में शामिल हो गया, लेकिन गढ़वाल रेजिमेंट का रंगरूप क्रमांक 4041100 लीलाधर पढ़ने-लिखने की उत्कृष्ट आकांक्षा की वजह से वहां अधिक समय तक ठहर नही सका, और सेना की अपनी नौकरी से मुक्ति के लिए बेचैन हो उठा। लीलाधर जगूड़ी ने अपनी नौकरी से मुक्ति का प्रार्थना पत्र तब सीधे तत्कालीन रक्षामंत्री को भेज दिया। इस मौलिक और सूत्रात्मक यात्रा ने लीलाधर जगूड़ी को जीवन भर के लिए संस्कार संपन्न बना दिया।

फिर सन् 1966 से लेकर 1980 तक उत्तराखंड के शासकीय विद्यालयों में अध्यापन कार्य करते हुए शिक्षक आंदोलन में शक्ति और शिद्दत से सक्रिय रहे, जगूड़ी कुछ समय के लिए शिक्षक संघ के अध्यक्ष भी रहे। उत्तराखंड के शिक्षक आंदोलन का आलम यह था कि कवि लीलाधर जगूड़ी का एक पैर स्कूल में तो दूसरा जेल में रहा। 13 सितम्बर 1970 का वह दिन लीलाधर जगूड़ी कभी भूल नहीं पाते हैं जबकि बाढ़ और भूस्खलन से गेंवला गांव (उत्तरकाशी) में परिवार के आधा दर्जन परिजनों की आकस्मिक मौत हो गई थी। इस प्राकृतिक विपत्ति ने लीलाधर जगूड़ी के घर, खेत, खलिहान पूरी तरह नष्ट कर दिए थे, लेकिन कवि के अदम्य साहस ने जोशियाड़ा में सब कुछ का फिर से निर्माण कर दिखाया। हाल फिलहाल में वे उत्तर प्रदेश राज्य सूचना विभाग में उपनिदेशक होने के साथ ही साथ राज्य शासन द्वारा प्रकाशित की जाने वाली साहित्यिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' के संपादक भी हैं। वे इधर की सिद्धान्त शून्यता को समय की सबसे बड़ी सामाजिक चिन्ता मानते हैं।

उनकी कविता मनुष्य-जीवन के बहुत भीतर तक आवागमन करती है। उन्होंने जीवन के हर सुख-दुःख, हर संघर्ष, हर उपलब्धि और हर सामाजिक-राजनीतिक घटना को अपनी कविता का सरोकार बनाया। जगूड़ी की कविता का, अर्जित-अनुभव से गहरा व गंभीर रिश्ता है, इस अर्थ में वे सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक और दार्शनिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक रिश्तों की बड़ी पहचान के बड़े कवि भी हैं। लीलाधर जगूड़ी के यहां कविता सिर्फ वही और उतनी ही नहीं होती है जितनी कि शब्दों में दिखाई देती है, तभी तो वह कहते हैं कि संसार का कोई भी धर्म, कोई भी सभ्यता, कोई भी संस्कृति ऐसी नहीं है जिसमें मनुष्य के सार्वभौमिक विचार सबसे पहले कविता के जरिये जाहिर न हुए हों। बुद्ध ने भी अब से ढ़ाई हजार बरस पहले अपने सार्वजनिक विचार कविता में ही व्यक्त किए थे। कविता का सीधा संबंध स्मृति है और सिर्फ उस स्मृति से जो सिर्फ मनुष्यों में उपलब्ध है। इसीलिए कहा भी गया है कि स्मरामि अतएव अस्मि् अर्थात् स्मरण करता हूं इसलिए मैं हूं और स्मृति का होना ही कवि होना भी है।

समकालीन समय, समाज और सभ्यता निश्चित तौर पर अनिश्चित विचार-शून्यता तथा संस्कृति-शून्यता के बीहड़ में हैं। कोई नहीं जानता कि यह बीहड़ कब बीतेगा? यह कहना भी मुश्किल तो अधिक है कि यह बीहड़ बीतेगा भी या नहीं? तब भी वह कविता ही.

है, जो भरोसा और साहस देती है। लीलाधर जगूड़ी की कविता तमाम वादों, वायदों और विवादों के बावजूद भरोसे और साहस की कविता है। 'अपनी कविता के प्रारंभिक काल में जगूड़ी का नाम अकविता-आंदोलन में भी शुमार रहा, लेकिन धूमिल के बाद जिस एक कवि ने अपने काव्य-मुहावरे का आविष्कार परिष्कार किया, हिन्दी में वह जगूड़ी ही है। शिवप्रसाद सिंह के 'नीला चांद' और सुरेन्द्र वर्मा के 'मुझे चांद चाहिए' (दोनों उपन्यास) के बाद लीलाधर जगूड़ी के 'अनुभव के आकाश में चांद' (कविता) का साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत होना स्तुत्य है।

O

रामनरेश त्रिपाठी : एक दृष्टि-एक विचार

❑ अवध वैरागी

किसी भी हिन्दी-प्रेमी के मानस-पटल पर कविवर रामनरेश त्रिपाठी का चित्र प्रतिबिम्बित होते ही एक ऐसे मनीषी की छवि उभरती है, जो वास्तव में बहुज्ञ थे। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, संस्मरण, बाल-साहित्य-सभी पर उन्होंने अधिकार के साथ लिखा। अपने युग के कवियों में वे बहुप्रशंसित बहुआदृत और बहुप्रतिष्ठित रहे। हिन्दी-साहित्य की सभी विधाओं में उन्होंने न केवल लिखा, बलिक अभिनव प्रयोग किया। उनके बताये दिशा-निर्देशों पर चलकर अनेक कवियों और लेखकों ने हिन्दी-साहित्य को विपुल संपदा से आपूरित किया। सच्चे अर्थों में रामनरेश त्रिपाठी रचना-धर्मिता के बृहस्पति थे।

सन् 1934 में त्रिपाठी जी द्वारा प्रणीत नाटक "जयन्त" तीन अंकों और छब्बीस दृश्यों से भरपूर एक ऐसा अभिनव नाटक है, जिसमें दीन-दुखियों की करुणा का बड़ा सजीव व मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में उन्होंने मानवीय घुटन, कुण्ठा तथा संत्रास का साकार और अर्न्वेदना का चिरंतन चित्र प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार "अजनबी", "प्रेमलोक", "पैसा परमेश्वर" आदि नाटकों में त्रिपाठी जी ने देश और समाज की समकालीन परिस्थितियों को इतिहास का अविस्मरणीय हिस्सा बनाया है। उनकी बहुज्ञता के बारे में जिज्ञासा व्यक्त करने पर उन्होंने एक अवसर पर कहा था—"कह तो दिया कि कोई विषय ऐसा नहीं, जिस पर न लिख सकूं। पाक-शास्त्र से लेकर नायक-शास्त्र तक सबमें मेरी अबाध गति है।" "बा और बापू" त्रिपाठी जी का, हिन्दी का और सम्भवतः उत्तर भारत की किसी भी भाषा में लिखा गया पहला एकांकी नाटक है। बाबू देवकी नन्दन खत्री, गोपालदास गहमरी और किशोरी लाल गोस्वामी का परम्परा को "लक्ष्मी और सुभद्रा" नामक दो उपन्यासों की रचना कर त्रिपाठी जी ने न केवल आगे बढ़ाया, बल्कि समृद्ध भी किया। त्रिपाठी जी के उपन्यास मन में कौतूहल जगाने के साथ-साथ पाठकों के सामने समस्या रखते हैं और समाधान भी सुझाते हैं। "आंखों देखी कहानियां" त्रिपाठी जी का ग्यारह कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में आज रिपोर्ताज की शैली में रोचक और समसामजिक चित्रों से भरपूर लिखी जा रही कहानियां सत्यकथा आदि के प्रेरक वास्तव में त्रिपाठी जी ही रहे हैं।

"तुलसीदास और उनकी कविता" हिन्दी-समालोचना के क्षेत्र में त्रिपाठी जी की अत्यन्त प्रसिद्ध कृति है। वे तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ के रूप में हिन्दी जगत में जाने जाते हैं। रामचरित-मानस के तो वे प्रख्यात व्याख्याता थे ही।

आज गोस्वामी तुलसीदास जी के जन्म-स्थल को लेकर विद्वानों में कई मत हैं।। कुछ विद्वानों का मानना है कि तुलसीदास का जन्म बांदा जिले में राजापुर में हुआ था। कुछ

मानते हैं कि गौंडा जिले के किसी स्थान पर हुआ था। कई विद्वानों की राय में एटा जिले का सूकर-क्षेत्र तुलसीदास जी की जन्मस्थली है। कविवर रामनरेश त्रिपाठी ने एटा जिले में गोस्वामी जी का जन्म माना है। तुलसी जन्मस्थली के बारें में सोरो (एटा) के पक्ष को प्रमाणित करते हुए "खेलत अवध खोरि, गोली भैंवराचकडोरि" के "चकडोरि शब्द के बारें में कहा है कि ब्रज और उसके आसपास के जिलों में भौंरा और चकडोरि खेलने का रिवाज बहुत है। अयोध्या, बनारस अथवा राजापुर में यह खेल नहीं खेला जाता, जबकि सोरो (एटा) में इसका बड़ा प्रचार है। त्रिपाठी जी मानते हैं कि तुलसी दास का जन्म ऐसे स्थल पर हुआ था, जहां भौंरा और चकडोरि खेलने का बहुत रिवाज था। रामचरितमानस और तुलसीदास के बारे में जितनी महत्वपूर्ण सम्मतियां अब तक प्राप्त हैं उनमें कविवर रामनरेश त्रिपाठी की सम्मति और दृष्टिकोण संगत है। तुलसीदास ने अपनी काव्य-साधना में किन-किन भाषाओं के शब्दों का उपयोग किया है उस पर अभूतपूर्व समालोचनात्मक दृष्टि त्रिपाठी जी की है। उदाहरण के तौर पर कवितावली की दो पंक्तियों को लें—

"भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।

कहैं मैं विभीषन की कछु न सबील की।"

इन पंक्तियों में दील (दिल) फारसी का और सबील अरबी का शब्द है, जिन्हें राम के मुख से कहलाया गया है। ऐसे रहस्यों का उद्घाटन अभूतपूर्व है। अपने कथन के संदर्भ में त्रिपाठी जी के तर्क अकाट्य हैं। प्रमाण प्रस्तुत करने का उनका तरीका अद्भुत है।

त्रिपाठी जी अप्रतिम हिन्दी-सेवी तो थे ही, साथ ही वे साहित्य-सेवी, समाज-सेवी राष्ट्र-सेवी और जन-सेवी भी थे। कविता में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के छंदों को देखकर सहज ही भान होता है कि भाषा उनकी वशवर्तिनी हो गई थी। वे जब जिस छंद में चाहते थे, भाषा उनके संकेतों का अनुसरण करती थी। "कविता कौमुदी" के कई भागों के माध्यम से उन्होंने हिन्दी-साहित्य का अभिनव इतिहास रचा और जीवन के सभी पक्षों पर कविता की कमनीय दृष्टि दौड़ाई "कविता-कौमुदी" (पहला भाग)-हिन्दी में, जिसकी प्रस्तावना राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने लिखी, त्रिपाठी जी ने "हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास" लिखा। इस इतिहास के माध्यम से उन्होंने ग्राम-गीतों के मर्म और उनकी सर्जना के पक्षों पर अद्भुत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। ग्राम-गीतों का संकलन करने वाले त्रिपाठी जी हिन्दी के प्रथम कवि थे। त्रिपाठी जी को ग्राम-गीत कविता कौमुदी के पहले संस्करण पर महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी, पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, डॉ० भगवान दास, लाला लाजपत राय, सर सीताराम, विश्व कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बाबू रामानन्द चटर्जी, महामहोपाध्याय डॉ० गंगानाथ झा, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, पंडित रामनारायण मिश्र, मिस्टर ए०जी० शैरिफ, राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पंडित अमरनाथ झा, डॉ० बाबूराम सक्सेना आदि की प्रशंसा सम्मतियां भी प्राप्त हुई थी।

रेल को सौतन के रूप में दर्शाने वाले एक ग्राम-गीत की सरसता, मधुरता और मार्मिकिता से कविवर रामनरेश त्रिपाठी इतना प्रभावित हुए कि वे ग्राम-गीतों के संग्रह में तन-मन-धन से जुट गये। "कविता-कौमुदी (तीसरा भाग)—ग्राम-गीत" में त्रिपाठी जी ने लिखा—"सन् 1924 के आस-पास की बात है। मैं प्रयाग से जौनपुर जा रहा था।

भन्नौर-स्टेशन पर कुछ स्त्रियां, कुछ मर्दों को, जो कलकत्ते जा रहे थे, पहुंचाने आई थीं और रो रही थीं। ट्रेन रोती हुई स्त्रियों को छोड़कर चल दी। कलकत्ते जाने वाले मर्द संयोग से थर्ड क्लास के उसी डिब्बे में आ बैठे थे, जिसमें मैं भी था। उनके साथ तीन-चार स्त्रियां भी थीं, जो अपने परदेशी पतियों के साथ या पास कलकत्ते जा रही थीं। रेल चलते ही स्त्रियां गाने लगीं।

पुरुब से आई रेलिया पछिऊं से जहजिया
पिय के लादि लेई गइ हो।
रेलिया होई गइ मोर सवतिया पिय के लादि लवेइ गइ हो॥
रेलिया न बैरी जहजिया न बैरी उहै पइसवइ बैरी हो।
दसवा-देसवा भरमाइव उहै पइसवइ बैरी हो॥
भुखिया न लागै पिअसिया न लागै हमके मोहिया लागइ हो।
तोहरी देखिके सुरतिया हमके मौहिया लागइ हो॥
सेर भर गेहूँवा बरिस दिन खइबै पिय के जाइ न देखौ हो।
रखबै अँखिया हजुरवां प्रिय के जाइ न देरै हो॥

रेल की तुलना मौत से होती हुई सुनकर मैं एकाएक चौंक पड़ा। यह तो बिल्कुल नई उपमा है। किसी स्त्री ही ने यह गीत रचा होगा। नहीं तो, ऐसी मर्म की बात कहने की इस जमाने में फुरसत ही किसको? स्त्रियां कैसा कवितामय हृदय रखती हैं? मैं यह बात सोचने लगा। रेल तो प्रत्यक्ष सौत का-सा कार्य करती है। वह पति को लेकर भाग जाती है। मुझे गीत रचने वाली के हृदय की सरसता बड़ी ही मधुर जान पड़ी। बस, इसी घटना के बाद से मैं ग्राम-गीतों की ओर आकर्षित हुआ हूँ।"

कविवर रामनरेश त्रिपाठी का मानना था कि किसी भी भाषा-शास्त्री के लिए जनपदीय बोलियाँ कामधेनु की तरह हैं। इनका अमृतपान किये बिना जन-जीवन का मर्म नहीं समझा जा सकता।

संस्था पुरुष त्रिपाठी जी के संपूर्ण कृत्य को एक आलेख या निबंध में समेटना बड़ा कठिन कार्य है। उनके व्यापक दृष्टिकोण को समझने के लिए उनकी कुछ काव्य-पंक्तियों पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। "पथिक" के माध्यम से व्यक्ति को युग-बोध और जीवन-बोध देते हुए वे कहते हैं—

"क्षमा, शान्ति, करुणा, उदारता, श्रद्धा, भक्ति, विनयिता।
सज्जनता, शुचिता, मनस्विता, मेधा मन निर्भयता॥
यह सम्पत्ति धरोहर प्रभु की तुम्हें मिली धरने को।
अवसर पर प्रस्तुत रख जन-हित में विचरण करने को॥"
और फिर आदमी को आत्म-निरीक्षण भी करना है—
"किसी के दोष जब कहने लगो तब,
न तुम खुद दोष अपने भूल जाना।
किसी का घर अगर है काँच का तो,
उसे क्यों चाहिए ढेले चलाना?"

तमाम मौकों पर तमाम तरह से आदर्शों की बातें करने के बावजूद—

"कोई ऐसा पाप नहीं है,
जो करने से बचा हुआ हो,
फिर भी हम करते रहते हैं।
कोई ऐसा झूठ नहीं है,
जो कहने से शेष रहा हो,
फिर भी हम कहते रहते हैं,
कोई ऐसी मौत नहीं है,
जो जीवन में बदल चुकी हो,
फिर भी हम मरते रहते हैं।

अपनी गलतफहमी या खुशफहमी के बीच भूले से आदमी को त्रिपाठी जी मानो एक-बारगी झकझोर कर जगा देते हैं—

"है जवानी ही जवानी का सही श्रृंगार यारो।
रूप को गहना अगर कुछ चाहिये तो सादगी है।
कोई कितना ही करे शोर पत्र लिखकर या जबानी,
प्रेम की सच्ची मिठाई तो विरह में याद की है।।'

और—

'कुछ अभागे रूप के बाजार की आजादियों पर
धर्म की देकर दुहाई राह चलते रो रहे हैं।
किन्तु जिनको आदमी होना नहीं अगले जनम में,
बेफिकर वे मौज में हैं, उस तरफ से सो रहे हैं।।'

72 वर्ष की आयु में महाप्रयाण करने वाले कविवर रामनरेश त्रिपाठी ने अपने जीवनकाल में लगभग सौ पुस्तकों का प्रणयन किया। आर्य भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय "प्रार्थना" हे प्रभो! आनंददाता, ज्ञान हमको दीजिए" के रचयिता त्रिपाठी जी ही थे। एक बार उनके निवास पर एक अनोपचारिक गोष्ठी में उनके किसी मित्र ने मतदान पर कविता करने का आग्रह किया। मित्र का आग्रह सुनना था कि त्रिपाठी जी का आशु कवित्व फूट पड़ा—

"धर्म के स्वराज में था भूमिदान, गजदान,
हेमदान, गृहदान, प्राणदान, मानदान।
आई बादशाही तो कलमदान, पीकदान,
और कई दान थे कटोरदान, पानदान।
आये अंग्रेज तब दानी गोंददानी रही,
उजड़ रहा था दान दानियों का खानदान।
आया मतदान अब आँखहीन, हाथहीन,
देते हैं निरक्षर भी पंडितों को ज्ञानदान।"

1958 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की "सम्मेलन पत्रिका" के संपादक पंडित ज्योति प्रसाद मिश्र "निर्मल" द्वारा "हमारे पूर्वज" शीर्षक एक कविता भेजने के आग्रह के उत्तर में त्रिपाठी जी ने "निर्मल" जी को अपने गाँव से 8 अप्रैल, 1958 को एक कवितामय पाती भेजी—

"डा० कोइरीपुर
ज़ि० जौनपुर
8.4.58

अब तो चलने के दिन आये।
पता नहीं है जीवन का रथ किस मंजिल तक जाये।
मन तो कहता ही रहा है, नियराये-नियराये॥
कर बोला जिह्वा भी बोली, पाँव पेट भर धाये।
जीवन की अनन्त धारा में सत्तर तक बह आये॥
चले कहाँ से कहाँ आ गये, क्या-क्या किये कराये।
यह चलचित्र देखने ही को अब तो खाट-बिछाये॥
जग देखा, पहचान लिए सब अपने और पराये।
मित्रों का उपकृत हूँ जिनसे नेह निछावर पाये॥
प्रिय निर्मल जी! पितरों पर अब कविता कौन बनाये?
मैं तो स्वयं पितर बनने को बैठा हूँ मुँह बाये।
अब तो चलने के दिन आये।"

—रामनरेश त्रिपाठी

इसी प्रकार की कवितामय पाती 11 अप्रेल, 1958 को त्रिपाठी जी ने लखनऊ में अपने अत्यन्त आत्मीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख सेनानी, संस्कृत-हिन्दी के उद्‌भट विद्वान् और आकाशवाणी के कर्मठ अधिकारी पंडित कमलापति मिश्र को भी लिखी, जिसमें अंतरंगता को रेखांकित करती हुई कुछ मर्मस्पर्शी पंक्तियाँ और भी देखने को मिलती हैं। त्रिपाठी जी की इस पाती से भी लगता है कि वे अपने जीवन की संध्या-बेला में काल का संकेत समझकर प्रयाण की ओर थे।

"डा० कोइरीपुर
ज़ि० जौनपुर
11.4.58

प्रिय कमलापति जी,

नमस्कार। सहृदयता से भरा हुआ आपका 5.4.58 का कार्ड पाकर हर्ष हुआ। लखनऊ आने का विचार स्थगित कर देना पड़ा। नये फोड़े हाथ में निकल आये। डाक्टर की दवा चल रही है। यात्रा नहीं कर सकता।

अब तो चलने के दिन आये।
जीवन की अनंत धारा में सत्तर तक बह आये।
पता नहीं, यह जर्जर नौका और कहाँ तक जाये॥

मैं सवार था, तब तो मनसा की तरंग परप पाये।
अब तो घोड़ा ही सवार है, इसको कौन हटाये।।
चलता ही रहता हूँ घर पर लेटे खाट बिछाये।
मन तो कहता ही रहता है, नियराये-नियराये।।
कितने दिया, छीन कब लेगा, यह जब बिना बताये।
कवि कोविद विज्ञान-विशारद कोई पता न पाये।।
ये ही प्रश्न मनोरंजन के मुनियों के मन भाये।
कहाँ-कहाँ बन-बीहड़ में वे अपने जनम बिताये।।
आँख मूँदकर चले रहा में पग-पग ठोकर खाये।
किन्तु कुछ नहीं मिला फिर गये घर को बिना कमाये।।
मैं तो कुछ भी नहीं, मानकर अपने खेल दिखाये।
दिखा सका सो दिखा दिया अब कौन वृथा पछताये।।
चलने की बेरी अब उठकर को पकवान बनाये।
मित्रों का उपकृत हूँ, जिनके नेह-निछावर पाये।।
अब तो चलने के दिन आये।"

—*रामनरेश त्रिपाठी*

याद करता हूँ कि त्रिपाठी जी के लखनऊ प्रवास के दौरान मिश्र जी का निवास स्थान सचमुच साहित्य-तीर्थ बन जाता था। उनकी पुण्य स्मृति को प्रणाम।



नृत्य और संगीत का कलात्मक जुड़ाव

❑ डॉ० सुषमा सरल

संगीत एक त्रिवेणी है, जिसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य—तीनों सरिताओं का मधुर संगम है। इन तीनों का एक दूसरे के साथ अभिन्न सम्बन्ध रहा है। न तो गीत को वाद्य से पृथक् किया जा सकता है और न ही नृत्य को गीत और वाद्य से। नृत्य भाव प्रदर्शन प्रधान है तथा यह कार्य गीत के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है। नृत्य में मुद्राएँ प्रधान हैं गीत गौण होता है। नृत्य का प्रदर्शन लय पर आधारित रहता है जिसके लिए मृदंग, पखावज आदि संगीत वाद्यों की आवश्यकता होती है। गीत का प्रभाव बढ़ाने के लिए और उसको अधिक-से-अधिक आकर्षक बनाने के लिए तन्तु वाद्यों तथा सुषिर वाद्यों की संगति अपेक्षित होती है। इन तीनों कलाओं के अभिन्न साहचर्य के कारण ही तीनों की पारिभाषिक शब्दावली में भी परस्पर समानता दिखाई देती है। संगीत रत्नाकर में शार्ङ्गदेव लिखते हैं—

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।"

अर्थात् गीत, वाद्य एवं नृत्य इन तीनों को संगीत कहा जाता है। इसमें नृत्य को वाद्य के अधीन माना गया है। वैसे व्यवहार में ये तीनों अपना पृथक्-पृथक् स्थान रखते हैं। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इसका विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। नाट्यशास्त्र के चतुर्थ अध्याय में नृत्य का वर्णन करने के उपरान्त तत्काल ही पंचम अध्याय में पूर्वरंग के सन्दर्भ में नृत्य के साथ संगीत की योजना पर प्रकाश डाला गया है। जहाँ नाट्य के लिए स्वर की तथा नृत्य के लिए ताल की आवश्यकता होती है वहीं नृत्य के लिए स्वर एवं ताल दोनों ही समान रूप से आवश्यक होते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बिना स्वर के नाट्य नहीं हो सकता, बिना ताल के नृत्य नहीं हो पाता तथा बिना स्वर और ताल के नृत्य नहीं होता।

नृत्य को सजीवता देकर गति उत्पन्न करने में संगीत का प्रमुख हाथ है। संगीत नट की आत्मा को आन्दोलित करता है जिसके फलस्वरूप नट के रूप में मानव के भौतिक शरीर में एक चेतना सी जागृत हो जाती है और वह काव्य-सरिता में आनन्दपूर्ण किलोलें करता हुआ ताल तथा लय की सृष्टि करने लगता है। लय का बन्धन अपना एक स्वतन्त्र वातावरण बना देता है जिससे नृत्य, नर्तक एवं दर्शकों के हृदय में परमानन्द की सृष्टि करता है। स्वर में अलौकिक शक्ति है, बिना स्वर की सहायता के नर्तक में भावना उदय नहीं होती। स्वर ही उसे हँसने या रोने को प्रेरित करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि नर्तक सदा वादक के साथ एवं सहयोग से ही नृत्य प्रदर्शन कर सकता है। नृत्य में सबसे महत्वपूर्ण नियम है ताल तथा लय के साथ एकरूपता का। अतः चाहे शास्त्रीय नृत्य हो या लोक नृत्य—नृत्य कला ताल तथा लय पर आधारित है।

ताल—भारतीय नृत्य और संगीत का भवन ताल की सुदृढ़ आधार भूमि पर ही प्रतिष्ठित है जैसा कि संगीत रत्नाकर में कहा गया है—"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले

प्रतिष्ठितम्" अर्थात् गायन-वादन एवं नर्तन यह तीनों ही क्रियायें ताल पर आश्रित हैं। ताल लय को दर्शाने की क्रिया है। लय स्वयं एक व्यापक एवं अखण्ड क्रिया है। इसको वांच्छित अन्तराल में बांधकर क्रिया से दर्शाना ही ताल है। ताली शब्द जो (ताल) से निकला है लय को दर्शाने की क्रिया का सूचक है।

"ताल-काल-क्रिया-मानम्" के अनुसार ताल समय के माप को कहते हैं। कुछ विशेष मात्राओं के अवकाश में नियमित की हुई दोनों हाथों के संयोग से अथवा किसी ताल वाद्य द्वारा स्वयं नापने को 'ताल' की संज्ञा दी गयी है। नृत्यकला में भाव और मुद्राओं के अतिरिक्त ताल, लय तथा मात्रा का ज्ञान अति आवश्यक है। बिना उसके नृत्य का अभ्यास बिल्कुल व्यर्थ हो जाता है। जिस प्रकार बिना व्याकरण जाने शुद्ध भाषा नहीं होती, उसी प्रकार बिना ताल के नृत्य भी शुद्ध नहीं हो सकता। ताल ही नृत्य का प्राण है। ताल के दस प्राण अथवा अंग होते हैं—काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, गति तथा प्रस्तार।

लय—लय शब्द का अर्थ है—संयोग, एकरूपता, मिलन। जब नृत्य करते समय किसी नर्तक की तत्कार तबले के ठेके से मिल जाती है तो हम सहसा कह उठते हैं कि—अब नर्तक ने लय पर अधिकार कर लिया है। लय तीन प्रकार की होती है—द्रुतलय, मध्यलय और विलम्बित लय। द्रुत का अर्थ है शीघ्रगति। क्रिया विच्छेद के एक निश्चित मान को आधार मानकर जिसमें काल गति शीघ्रता से हो, वह द्रुतलय है। द्रुतलय के द्विगुण विभ्रान्ति काल को मध्यलय कहा जाता है। मध्यलय के द्विगुण काल को विलंबित लय कहते हैं। परन्तु, जब बड़े-बड़े नृत्यकार विशेष रूप से अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं तो उन्हें उपरोक्त तीन लयों के अतिरिक्त और भी लयों की आवश्यकता पड़ती है। उन्होंने अपने लिए अन्य लयों का निर्माण किया होता है जैसे अतिविलम्बित लय, तिगुन लय, चौगुन लय, अठगुन लय, आड़ी, कुआड़ी, बिआड़ी लय आदि।

अतः गायन और वादन के बिना नृत्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। नृत्य तो केवल वादन के द्वारा अभिव्यक्त हो सकता है, किन्तु नृत्य के लिए गायन और वादन दोनों ही बातें आवश्यक हैं। नृत्य में संगीत का आयोजन रसों के अनुसार किया जाता है। नृत्य में कम से कम संगीत उपकरणों का प्रयोग करने पर भी अधिक प्रभाव पड़ता है। नृत्य और संगीत दोनों की संगति वाद्य से होती है। संगीत में जो ध्वनियां मुख से निकलती हैं उन्हीं के अनुरूप ध्वनियां वाद्यों द्वारा संगति के लिए प्रस्तुत की जाती हैं। कुछ वाद्य संगीत और नृत्य में ताल का समर्थन करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। वाद्य की यह उपयोगिता नृत्य और संगीत के आदिम युग से ही रही है। ऋग्वेद काल में "आद्याटि" नामक वाद्य नृत्य की संगति में बजाया जाता था। नृत्य एवं संगीत के घनिष्ठ सम्बन्ध की पुष्टि प्राचीन भारतीय चित्रकला, मूर्तिकला तथा संस्कृत के साहित्यिक ग्रन्थों में उपलब्ध नृत्य के साथ बजाये जाने वाले संगीत वाद्यों के उल्लेखों एवं वर्णनों से भी होती है—

चित्रों में चित्रित संगीत वाद्य—चित्रकला में प्रागैतिहासिक काल से ही संगीत वाद्यों का चित्रण मिलता है। आदमगढ़ में भालू अथवा बन्दर के नृत्य के साथ एक आदमी तार का बाजा बजाता हुआ चित्रित है। जोगी मारा की गुफा में भी नर्तकियों के साथ गायकों और वाद्य बजाने वालों का चित्रण हुआ है। बाघ गुफा में हल्लीसक नर्तकियों को दो समूहों में 7 और 6

की संख्या में चित्रित किया गया है। प्रथम समूह की जो सात नर्तकियां चित्रित हैं उनमें से एक ढोलक बजाती, तीन गाती हुई हाथों से काष्ठ दण्ड का वाद्य प्रस्तुत करती एवं शेष तीन मंजरियाँ बजाती हुई प्रस्तुत हैं।

इसी प्रकार बृहदीश्वर अथवा राजराजेश्वर मन्दिर की छत और भित्तियों पर चित्रित नर्तकी अप्सराओं के साथ विष्णु को ताल देते तथा गण व अन्य देवी संगीतज्ञों को वाद्य बजाते हुए दिखाया गया है। अजन्ता की पहली गुफा में नृत्य के दृश्य के साथ वंशी, वीणा, मृदंग, ढोल आदि वाद्यों का चित्रण हुआ है। अनन्तर भारत में प्रचलित विभिन्न चित्र शैलियों यथा जैन, मुगल, राजपुताना, कांगड़ा, बसोहली, कश्मीर, जम्मू, पुन्छ, बादामी, सित्तनवासल, एलोरा, पाल, गुजरात, अपभ्रंश, दक्षिण शैलियों आदि के अन्तर्गत बनाये गये चित्रों में भी जहाँ-जहाँ नृत्य के चित्र उपलब्ध होते हैं वहाँ-वहाँ उनके साथ संगीत देने वालों का संगीत वाद्यों के साथ चित्रित हुआ है। इसका इन शैलियों के अन्तर्गत विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर श्रृङ्खला और स्वतन्त्र दोनों रूपों में चित्रण हुआ है। इन सभी में जहाँ-जहाँ पर भी नृत्य के चित्र उपलब्ध होते हैं, वहीं उनके साथ ढोलक, वीणा, बांसुरी, काष्ठ दण्ड, तानपूरा, सारंगी, तुरही तथा झांझ-मंजीरा आदि भी चित्रित उपलब्ध होते हैं।

मूर्तियों में मूर्तित संगीत वाद्य— मूर्तिकला में भी नृत्य मूर्तियों के साथ ही वाद्य संगीत बजाने वालों को वाद्य वादन करते हुए दर्शाया गया है। उदयगिरि की वराह गुफा में स्वर्ग के ऊपरी भाग में उड़ते, हुए देव तथा पांच अप्सराओं के उत्कीर्णन के बीच वाली नृत्यरत अप्सरा के साथ अन्य अप्सराओं को मृदंग, वंशी आदि बजाते तराशा गया है। विश्व प्रसिद्ध चिदम्बरम् के नटराज मन्दिर के गोपुरों में हर एक नर्तकी के साथ ही उसकी एक ओर वादक तथा दूसरी ओर ताल देने वाले की मूर्ति भी बनाई गई है। एलोरा के प्रसिद्ध कला-मण्डप में जहां नटराज की नादन्त नृत्त मूर्ति स्थापित है वहीं उनके पास ही पार्षदों में से एक वंशी बजाता तथा दूसरा मृदंग पर थाप देता बनाया गया है और दो खड़ी स्त्रियों को वाद्य लिए उत्कीर्ण किया है। पूर्वी भारत में स्वयं नटेश हाथ में वीणा लिए मूर्तित किए गए हैं।

ग्वालियर में मवाया के मन्दिर की द्वारपरिपट्टिका पर वाद्य की संगीत से युक्त नृत्य के दृश्य का अंकन है। इसमें तत्कालीन वाद्य यथा—सरोद, टिमकी, तबला, स्वर-मण्डल आदि वाद्यों की रूपरेखा तथा उनके बजाने की शैली का परिचय मिलता है। इसी भांति अमरावती के स्तूप पर नर्तकों और वादकों का समूह भावपूर्ण अभिनय में संलग्न दस की संख्या में उत्कीर्ण है। इनके नृत्य में संगीत के लिए वीणा और वंशी प्रयोग में लाये गये हैं।

साहित्यिक ग्रन्थों में वर्णित तथा उल्लिखित संगीत वाद्य

साहित्यिक ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र नृत्य के साथ-साथ वाद्यों को बजाने का दर्शन तथा उल्लेख हुआ है।

रामायण-महाभारत में—रामायण में स्थल-स्थान पर जहां नृत्य के वर्णन तथा उल्लेख मिलते हैं वहीं उनके साथ सङ्गीत वाद्यों का भी वर्णन मिलता है तथा बालकाण्ड में कुशनाम की सौ पुत्रियों द्वारा उद्यान में बाजे बजाकर तथा गा-गाकर नृत्य करने का वृत्तान्त, राम, लक्ष्मण आदि चारों भाइयों के विवाहोत्सव पर गीत वाद्यों की ध्वनि के साथ अप्सराओं द्वारा

देवताओं के दुन्दुभि घोष पर नृत्य करने तथा राम के राज्य अभिषेक के अवसर पर बाजा बजाने वाले एवं नाचने वाली गणिकाओं द्वारा राजभवन में नृत्य करने का उल्लेख हुआ है।

इसके अतिरिक्त बालकाण्ड में ही नृत्य के साथ वीणा बजाये जाने का संकेत मिलता है। रामचन्द्र के अश्वमेध यज्ञ में नाचने वाले नटों के साथ गाने और बजाने वालों को भी निमन्त्रण दिया गया था। रामायण के अनुसार रावण की सभी स्त्रियां नृत्य और वादन में कुशल थीं। उनके वाद्यों में सर्वप्रमुख वीणा थी। अन्य वाद्य पटह, मड्डुक, वंश, विपञ्ची, मृदंग, पणव, डिण्डिम, आलम्बर आदि थे जिनको बजाते हुए स्त्रियों ने रावण के लिए विनोद प्रस्तुत किये थे और उन्हें लिए हुए ही अन्त में सो गई थीं।

महाभारत के अनुसार अर्जुन ने चित्रसेन नामक गन्धर्व से संगीत, नृत्य आदि की शिक्षा ग्रहण की थी और आगे चलकर अर्जुन राजा विराट की संगीत शाला का प्रधान आचार्य नियुक्त हुआ तथा राजकुमारी एवं दासियों को नृत्य की शिक्षा देने लगा। द्रोण पर्व मे राजाओं को प्रातःकाल जगाने के लिए नर्तकों-गायकों के अतिरिक्त वादकों की नियुक्ति भी ज्ञात होती है।

अन्य संस्कृत काव्यों में—रघुवंश के तृतीय और उन्नीसवें सर्गों से ज्ञात होता है कि उस समय पुत्र जन्म के अवसर पर नृत्य के साथ सूर्य बाजे और मृदंग बजाये गये थे। कुमारसम्भव के ग्यारहवें सर्ग में अप्सराओं के नृत्य के साथ अंक्य, आलिङ्गयक और ऊर्ध्वक नामक तुरहियों के बजने का उल्लेख मिलता है। बुद्धचरित के द्वितीय एवं छब्बीसवें सर्ग में अप्सराओं तथा मार-विजय के उपलक्ष्य में मार की सेना द्वारा किये गये नृत्यों के साथ मृदंग एवं पटह नामक वाद्यों को बजाने का वर्णन हुआ है।

इसी भांति शिशुपाल वध के तेरहवें सर्ग में उल्लिखित है कि श्रीकृष्ण भगवान् के समक्ष नर्तकियों ने जो विलासपूर्ण नृत्य किये थे उनके साथ तत्त आनद्ध, घन एवं सुषिर नामक वाद्य बजाये गये थे। नैषधचरित के पन्द्रहवें सर्ग से ज्ञात होता है कि उस समय नृत्य के साथ विभिन्न प्रकार के पटह भेरी आदि वाद्यों का वादन किया जाता था। गीतगोविन्द में रासक्रीड़ा के साथ हाथों की ताली तथा मुरली की ध्वनि का संगीत दिया जाता था। विक्रमाङ्कदेवचरित के दूसरे सर्ग में लिखा है कि : 'नटों के नृत्य के साथ तुरही एवं दुन्दुभि वाद्यों का वादन होता था। नैषधचरित से ही ज्ञात होता है कि राजकुमारी दमयन्ती तथा उसकी शिष्यायें नृत्य कला में निपुण होने के साथ-साथ वीणा वादन में भी कुशल थीं।

नाटकों में—नाटक साहित्य में सर्वप्रथम बालचरितम् नाटक में जहां हल्ली नामक नृत्य के नगाड़ों की धुन पर करने का उल्लेख मिलता है तो वहीं माल्विकाग्निमित्र नाटक में छलित या चलित नृत्य के साथ बजाये गये वाद्यों में मृदंग का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। प्रियदर्शिका में वर्णित है कि कन्याओं को विवाह से पूर्व नृत्य-गीत-वाद्य की शिक्षा दी जाय। उस समय वीणा को साथ दिये जाने का चलन था ऐसा उल्लेख चतुर्भाणी में मिलता है।

आगे 'रत्नावली' तथा 'कर्पूरमञ्जरी' नाटकों में "चर्चरी' नृत्य के आयोजन का वर्णन है। इस नृत्य के साथ मृदंग का बजाना तथा हाथों से ताल देना प्रमुख वाद्य थे साथ ही स्वयं नर्तकियों द्वारा द्वार निष्कंभ का जोर-जोर से वादन करना, क्षुद्रघण्टिकाओं से 'रुण झुण' शब्द करना पांव के नूपुरों को बजाना तथा वीणा बजाना अन्य वाद्य थे। 'चण्डकौशिक' नाटक से

भी यही पता चलता है कि अप्सराओं द्वारा किये नृत्य के साथ नगाड़ों के संगीत का प्रयोग हुआ था।

गद्य साहित्य में—गद्य साहित्य में भी नृत्य के साथ संगीत वाद्यों का नान्तरीयक सम्बन्ध सूचित होता है। कादम्बरी में वैशम्पायन नामक सुग्गे (तोते) की वीणा, वेणु और मुरज इत्यादि वाद्यों के सुनने का रसिक तथा नृत्य प्रयोगों के देखने का चहेता कहा गया है। अनन्तर चन्द्रपीड़ एवं वैशम्पायन के जन्मोत्सव पर किये गये नृत्य के साथ विभिन्न संगीत वाद्यों के प्रयोग का वर्णन मिलता है यथा—मन्दराचल से मथे गए समुद्र के घोष के समान गम्भीर दुन्दुभि वादन सभी वाद्यों में प्रमुख ध्वनि कर रहा था। उसके बाद कोमल शब्दकारी मृदंग, शंख, बड़े ढोल तथा छोटे नगाड़े एवं विजय नगाड़े बजाये गये तथा लोगों ने आनन्द से परिपूर्ण होकर उन्मत्त के समान नृत्य किया। आगे शुकनास के घर पुत्र उत्पन्न होने पर गूंगे, कुबड़े, बहरे, किरात, बौने और मूर्ख उद्धत नृत्य से विह्वल होकर जो नृत्य कर रहे थे उसमें वीणा, वंशी, मृदंग, कांसा और मंजीरों का प्रयोग हुआ था। साथ ही भेरी, मृदंग, ढोल और नगाड़े के शब्द के साथ-साथ बड़े-ढोलों और शंखों का वादन भी किया गया था।

हर्षचरित में भी नृत्य के साथ संगीत वाद्यों के बजाने का वर्णन हुआ है कि वेश्याओं के नृत्य के साथ आलिङ्ग्यक नामक का मृदंग धीरे-धीरे बजाया जा रहा था। वंशी की सुरीली तान भी बज रही थी। झांझ भी झड़बड़ा रही थी। तन्त्री पटहिका नामक एक ताशेनुमा छोटा बाजा टुनटुनाया जा रहा था। नीचे की तुम्बी वाली अलाबुकी वीणा धीरे-धीरे बजाई जा रही थी। कांस्य कोशी काहल नाम का वाद्य भी मधुर बज रहा था। एक ही समय में धीरे-धीरे तालियां भी बजाई जा रही थीं। डग-डग पर उनके गहने बज उठते थे, मानों सहृदय लोग उनके पीछे ताल और लय का अनुसरण करते चले रहे हों। कोयल के समान वे काकली के अव्यक्त मधुर स्वर में अलापती थीं। सुनने में विटों को प्रिय लगने वाले गाली भरे रासक गीत गा रही थीं। इससे यह सिद्ध होता है कि बाण के समय में शंख, दुन्दुभि, तूर्य, वेणु, वीणा, झल्लरिका, ताल तथा काहल आदि वाद्यों का नृत्य के साथ प्रमुख रूप से वादन किया जाता था।

इस प्रकार नृत्य के साथ संगीत वाद्यों के चित्रण, तक्षण वर्णन एवं उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नृत्य का संगीत के साथ ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि संगीत अर्थात् गायन और वादन के बिना नृत्य करने की कल्पना ही व्यर्थ है। क्योंकि नृत्य में भावों का प्रदर्शन किया जाता है। भाव शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए बनाये जाते हैं और शब्दों से गीत की रचना होती है। गीत गायन के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जिसके लिए वाद्ययन्त्र परम आवश्यक होते हैं क्योंकि वाद्यों को बजाते हुए गीत गा गाकर नृत्य को लय-ताल में बांधकर प्रस्तुत किया जाता है। नृत्य अपने तकनीक के रूप में आरम्भ से ही गायन और वादन से समन्वित है। उस समन्वय में यदि गायक और वादक अपना सहयोग न दें तो नृत्य किया ही नहीं जा सकता। अतः नृत्य की चाहे कोई भी शैली हो तकनीकी, सामाजिक, कलात्मक और मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से गायन और वादन की कला का सहयोग उसके लिए परम आवश्यक ही नहीं अपितु उसका अविभाज्य अंग भी है।

○

कृति आकलन

सीढ़ियां और शिखर

❑ मनोज शर्मा

'जलता हुआ गुलाब', **'कोई एक दिन'**, **'राख और चीलें'**, **'फूल खिलने की आवाज़ नहीं होती'**, **'सुबह के साथ, इतना सब कुछ होने के बावजूद'** जैसी पठनीय पुस्तकें हिन्दी जगत को देने वाले प्रबुद्ध कृतिकार तरसेम गुजराल की नयी कृति **'सीढ़ियां और शिखर'** हमारे सामने है। इस संकलन की अमूमन नो की नो कहानियां हिन्दी साहित्य जगत की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित व चर्चित हो चुकी हैं।

इन्होंने आज की हिंदी कहानी के संदर्भ में कई स्थानों पर कहा है कि उस तरह के बड़े धमाके जो नई कहानी ने किए थे, अब नहीं हो पा रहे हैं। आज की कहानी के ही संबंध में "उद्भावना" के कहानी-महाविशेषांक में संपादकीय के अंतर्गत संतोष चौबे लिखते हैं, ". . . आज कथाकार कहानी के बीच छोटे-छोटे विस्फोट करता चलता है या विज्ञापनी छवियों को–जो नगरीय जीवन के रोजमर्रा की सोच का हिस्सा बन गई हैं–अद्‌भुत चमक और फुर्ती के साथ कहानी में लाता है।" यहां पर एक स्पष्ट रूप में उभरा विरोधाभास है। वरिष्ठ कथाकार व हंस के संपादक राजेन्द्र यादव किसी साक्षात्कार को कहते हैं कि पुरानी ढरों (औजारों) से आज की कहानी को लेकर किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता और वरिष्ठ कथाकार विजय मोहन सिंह मानते हैं," कहानी एक खुली विधा है, जरा सी कमजोरी कहानी में छिपी नहीं रह सकती . . . कहानी सस्टेंड ऊर्जा मांगती है।" यह वक्तव्य अधिक आश्वस्त करता है, चूंकि कहानी यदि क्षण का ही विस्तार है तो भी इसे चाही गई ऊर्जा की जबरदस्त जरूरत है।

'सीढ़ियां और शिखर' में डॉ० तरसेम गुजराल ने कोई सनसनी नहीं फैलानी चाही है। कहानीकार की पक्षधरता यहां यही है कि आसपास के कस्बाई माहौल को उसके संपूर्ण द्वंद्व सहित उठाना है। इस उठाने में, बुर्जुआ मानसिकताएं हैं, मध्यवर्गीय सुनहरी सपनों का मिराज व उसकी टूटन भरी कारूणिक स्थितियां हैं, सामाजिकता है तथा बहुधा प्रथम पुरुष की "मैं" नामक आत्मकथात्मक शैली है। मूलतः आर्थिक अभाव के कारण उपजी तथा फैली असहाय विवशता को लेखक इस तरह पकड़ता है कि मध्यवर्ग का सम्पूर्ण अवसरवादी टुच्चापन सामने हाज़िर हो जाता है।

पहली नजर में इन नौ कहानियों में डॉ० गुजराल के रचना संसार के बच्चे, स्त्रियां, मर्द व उनका परिवेशगत द्वंद्व, आदर्श, आदर्शों की उतरती झाग, बच्चों के खेल, गलियां-मोहल्ले, दुकानदार, सपने, लालसाएं, चुप्पियां, मुखरताएं वगैरह नजर आती हैं। कथाकार का कमाल यहीं है कि वह इस सबसे संतुष्ट नहीं। उसकी पहली ही सशक्त कथा 'दरबदर' में कुवैत पर इराक के हमले तथा सद्दाम हुसैन की अंतर्राष्ट्रीय थानेदारी के साथ-साथ विस्थापन की समस्याएं उभरती हैं, स्त्री-मर्द के दैहिक सुख के साथ, किसी के लिए कुछ करने की इंसानी चाह है, बारूद के गंधाते माहौल से टी-सैट बचाकर लाने की संवेदनशील प्रसन्नता के बीच घर की सांकल बजाता, अपने ही देश का आतंकवाद हैं इसी तरह से चिड़िया, फूल और पत्ते नामक दो भागों में बंटी कहानियों में भी ठेठ मध्यवर्गीय शैली के चलते हुए, लेखक मुसलमान टीचर को एक संवाद में लाकर दूसरा इशारा कर जाती है उन्हीं स्कूलों में एक ही लाठी से सभी को हांकने की ओर ध्यान दिलाया गया है। मध्यवर्ग की तमाम प्रेत-बाधाओं के चलते हुए, बच्चों के जरिये ही एक कल्चर डिफरेंस भी दर्शाया गया है।

इसी तरह से बुढ़ाती लड़कियों के दैहिक सच व नेकी की कमाई पर चूल्हा चलाने वाले पिता के संस्कार में 'गंदी किताब' नामक कथा, जहां ओढ़ी हुई नैतिकता की बात उठाती है, वहीं प्राईवेट कंपनियों में क्लास फोर के काम करते हुए आदमी (कर्मचारी) के, साहब के रुतबे में जीने वाले द्वंद्व को भी चित्रित करती है। शीर्षक कथा 'सीढ़ियां' में भी एक प्रतीक रचा गया है। एक वर्ग-विशेष का यहां भी चढ़ता-उतरता वायवीय मोह व भटकाव, फैंटेसी की शैली में उपस्थित है। मां की सिसकारियों की गवाह रातें हैं। अपनी ही महत्वकांक्षाओं के मुंदते जाते आनंद में पिता का ठगा जाना व टूटना है तथा नायक का अंततः इसी तरह का ही हो जाना है कि अपनी ही बीवी को इस्तेमाल करे। इस कथा की शैली में लेखक एक साथ मनोविज्ञान के कई तंतुओं पर खरोंच लगाता है। इस कथा को पढ़कर, मुझे शिद्दत से अनुभव हुआ कि डॉ० तरसेम गुजराल के रचना-संसार की औरतों व बच्चों पर अलग से काम करने की आवश्यकता है।

बीच खेल में नामक कथा में भी बच्चों के माध्यम से वर्ग-संघर्ष बुना गया है। बचपन को लेकर नॉस्टेलिजक कवितामय रवैया भी लेखक के पास है। मठ एक बेहतरीन, औपन्यासिक कलेवर की जरूरी कहानी है। राजनीति, धर्म, स्त्री-आकर्षण, अंतर्द्वंद्व इस कथा के मूल तत्त्व हैं। निम्नमध्यवर्ग की मकान की समस्या को उघाड़ती 'सूरा सो पहचानिए' में दूसरी ओर टेड्र-यूनियन है और कतरा-कतरा चुकते प्रशासन, राजनीति एवं मीडिया है।

गलत व्याकरण नामक अंतिम कथा बनायी गयी व फिल्मी लगी है। फिर भी इसमें दया की सड़ांध मारती मध्यवर्गीय जिंदगी व गुंडई एवं बिकने-खरीदने टूटने-तोड़ने की जद्दोजहद है प्रशासन तथा तंत्र को कटघरे में खींचा गया है।

कुल मिलाकर यह एक पठनीय कहानी-संग्रह है। 'दरबदर', चिड़िया, फूल और पत्ते गंदी किताब सीढ़ियां एवं मठ कहानियों के लिए डॉ० तरसेम गुजराल को देर तक याद रखा जायेगा।

○

बड़े न हूजै गुनन बिन बिरद पढ़ाई पाय

कहत धतूरे सों कनक गहनो गढ़ो न जाय

बिहारी

स्मरण

कश्मीर के संतकवि परमानन्द

❑ पृथ्वीनाथ राज़दान महानोरी

यद्यपि कश्मीरी साहित्य का आरम्भ आज से बहुत पहले श्री शितिकंठ जी की क़विताओं के द्वारा हो चुका था। पर वास्तविकता कश्मीरी कविता का आरम्भ ललद्यद के अध्यात्मिक अनुभव पर आधारित/रहस्यवादी कविताओं एवं नुन्द ऋषि की उपदेशात्मक कविताओं से ही माना जाता है।

एक तरफ ललद्यद अपनी रहस्यवादी कविताओं से जिनमें आध्यात्मिक अनुभव और गहरे विचारों की पैठ थी, के कारण आज तक अतुलनीय रहीं। वहीं दूसरी तरफ नुन्दऋषि और परमानन्द जी अपने धार्मिक दर्शन के कारण अजेय रहे। कश्मीर में हिन्दु मुसलमान दोनों ही इन तीनों के प्रति समान भाव से हार्दिक सम्मान की दृष्टि रखते हैं।

कहा जाता है कि नुन्दऋषि ने अपने जन्म के काफी समय उपरान्त तक मां की छाती से दूध पीने से इन्कार किया था ललद्यद को जब इसकी खबर हुई तो उन्होंने निम्नलिखित उपदेशात्मक कविता के द्वारा उन्हें मां का दूध पीने के लिए राजी किया।

अगर जन्म लेने से तुम नहीं हुए लज्जित तो दुग्धपान से लज्जित क्यों हो?

पटवारी की नौकरी से त्याग पत्र देने के उपरान्त गांव के मुखिया सालिम-गनाई ने परमानन्द जी की हर सम्भव सहायता की थी।

परमानन्द जी का जन्म 1791 मटन के नजदीक सीरगांव में हुआ। इनके पिता कृष्ण पंडित एक प्रसिद्ध विद्वान थे। उनका लालन-पालन बड़े पवित्र वातावरण में हुआ तत्कालीन प्रथा के अनुसार उनकी प्रारम्भिक शिक्षा, फ़ारसी में हुई। अल्पशिक्षित होते हुए भी उन्होंने गरीब के उपनाम से जीवन के आरम्भिक दिनों में कविताएं लिखीं। परमानन्द जी के पटवारी होने के दिनों में इनके पिता ने महाभारत का फ़ारसी में अनुवाद किया।

परमानन्द जी के भक्त मूर्तिकार नारायण द्वारा निर्मित उनका एक चित्र मिला है। जिससे उनके वृद्धावस्था में भी बलिष्ठ, पुष्टकाय होने का संकेत मिलता है।

वास्तव में परमानन्द जी कोमल स्वभाव वाले संत कवि थे जिन्होंने जीवन में भरपूर ज्ञान और सम्मान अर्जित किया। जो ज्ञान, सम्मान की चरम सीमा तक पहुंच गये थे। उनका विवाह उनके बचपन की सखी मालद्यद से हुआ वह उनके स्वभाव के विपरीत तेज तर्रार स्वभाव वाली स्त्री थी, सारी जिन्दगी वह परमानन्द जी पर शासन करती रही।

अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त परमानन्द जी को 25 वर्ष की आयु में पटवारी की नौकरी मिली। इसी समय उन्होंने अपने पिता द्वारा लिखित महाभारत का फ़ारसी अनुवाद पढ़ा। आपने खुद उपनिषद का फ़ारसी में अनुवाद राजकुमार दारा शिकोह की देख-रेख में किया। यहीं पर उन्होंने अखिल भारतीय विद्वानों के भाषण शैवमत और वेदान्त सुने। यहीं

उन्होंने पुराण तथा ललद्यद और नुन्दऋषि की पुस्तकों का भी अध्ययन किया। कहा जाता है कि एक सिख साधु से वह गुरू ग्रन्थ साहब का राग प्रवचन सुनते थे। अपने कुल गुरू और उनके पुत्र (पं० आत्माराम) से उन्होंने कुंडलिनी योग तथा सात चक्रों का ज्ञान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने पिता श्री कृष्ण पंडित से भी ज्ञान प्राप्त हुआ था इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है।

"भगवान कृष्ण मेरे गुरू हैं वे ही मेरे परम प्रिय पिता हैं वे समस्त संसार का मूल हैं।

परमानन्द जी के पिता का नाम कृष्ण पंडित था और कृष्ण के पिता का नाम नन्द। परम पिता के साथ एक्य का अनुभव करते हुए वह विनोदपूर्वक पूछते हैं :–

अगर कृष्ण हमारे पिता हुए
पिता तुम्हारा नन्द
आपस में क्या सम्बन्ध?
अकेले आप नहीं कर सकते निश्चय

परमानन्द जी अपने समकालीन मुसलमान फकीरों से भी मिलने जाते थे। जैसे ख्रिव गांव के वहाब साहब फ़ारसी के धार्मिक दर्शन शास्त्र पर लिखते बोलते थे। एवं उनके पड़ोस में रहते थे वे बृजविहारा के नन्दकाक जी से भी मिलने जाया करते थे। कहा जाता है कि एक बार आप, परमहंस स्वामी आत्मानन्द जी बनारस वाले के साथ अपने घर में एक महीने तक ध्यान योग तथा आध्यात्मिक मनन के लिए बंद रहे।

परमानन्द को एक बार पं० नन्द काक जी ने अपने घर बृज बिहारा में सितार वादन सुनने के लिए आमन्त्रित किया। संगीत सभा रात भर चलती रही। अधिकतर सुनने वाले धीरे-धीरे नींद की खुमारी में डूब गए। गायक के भक्ति गीतों का प्रभाव सारे वातावरण पर छा गया। गायन इतना भक्ति रसपूर्ण था कि परमानन्द जी ने ईश्वर के साथ 'एक्य' अनुभव किया। नन्दकाक जी भी मग्न होकर संगीत का आनन्द ले रहे थे कुछ समय के लिए उनकी आंख लग गयी। निद्रा के उन मधुर क्षणों में उन्होंने राधा कृष्ण जी को मुस्कराते हुए बैठे पाया। तत्क्षण वह जाग गए और अपने आदरणीय अतिथि संगीतज्ञ संत मित्र ने परमानन्द जी के सामने सिर झुका कर प्रणाम किया। इस घटना से दोनों मित्र और निकट आ गए। पं० नन्द काक जी इसके उपरान्त अक्सर बृज बिहारा से मटन तक 9-10 मील चलकर चावल की रोटियों को प्रसाद समझ कर लेते थे और उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर के शिष्यों तथा भक्तों में वितरित करते थे।

परमानन्द जी को अपनी भाषा पर पूरा अधिकार था वह जहां संस्कृतनिष्ठ कश्मीरी भाषा में जहां गम्भीरतम दार्शनिक विचार प्रकट कर सकते थे वहीं विचारों का तारतम्य भी बनाये रखते थे। एक बार उनके संत मित्र ख्रिव के वहाब खार साहब की शिकायत पर कि उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है परमानन्द जी ने उसी समय उनके लिए शुद्ध कश्मीरी भाषा में कविता को रच दिया।

परमानन्द जी की भाषा पर मटन के यात्रियों की भाषा के वाद-विवाद का कोई असर नहीं पड़ा। उन्होंने बहुत सारे भजन हिन्दी-पंजाबी मिश्रित भाषा में भी लिखे। उनके बारे में

यह कहना कि वह कश्मीर के हिन्दी भाषा में लिखने वाले प्रथम संत कवि थे गलत न होगा। यद्यपि रूप भवानी ने इस दिशा में बहुत पहले से ही छोटी सी शुरूआत कर दी थी।

परमानन्द जी के जीवन चरित्र पर उनकी संम्प्रेषण शैली और विचारधारा पर उनके आस-पास के प्राकृतिक वातावरण पर पटवारी व्यवसाय तथा ग्रामीण जीवन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। परमानन्द पर लिखने वालों में सबसे विश्वसनीय विद्वान मास्टर जिंदा कौल हैं। जिन्होंने परमानन्द की कविताओं को पांच खण्डों में विभाजित किया है।

1. देवी-देवताओं से अपने पापों के लिए क्षमा याचना की कविता।

2. कर्मभूमिका तथा अमरनाथ यात्रा सम्बन्धी कविताएं।

3. तीन लम्बी कविताएं सुदामा चरित्र, राधा स्वयंवर, शिवलग्न जैसी तीन लम्बी कवितायें जो अध्यात्मवादी कविताएं हैं।

4. ऐसी कविताएं जो साधना के महत्व पर प्रकाश डालती हैं।

5. ऐसी वैदान्तिक और दार्शनिक कविताएं जो बौद्धिकता से परिपूर्ण हैं तथा अन्तिम सत्य के अपरोक्ष दर्शन का वर्णन करती हैं।

उदाहरण स्वरूप—

श्री मनु जगत माता तू धन्य है।

पवित्र करो अपनी दृष्टि डाल के मुझ क्षुद्र को। क्या हम तेरे प्रकाश की एक किरण नहीं ?

कर्म भूमि में धर्म के बल से संतोष रूपी बीज से आनन्द फल बोओ । श्वास के दो बैलों से रात दिन जोतो, तुम जीवन रूपी खेल को कठिन परिश्रम रूपी चाबुक की मार से देखो। कोई टुकड़ा न रह जाये अनजोता, संतोष रूपी बीज से आनन्द फल प्राप्त करो।

ईश्वर के मित्र सुदामा (जीव) आए भगवान सुर्दशन उनके आगमन के लिए उठे। सुदामा (जीव) ने अपने आप को ईश्वर के अनुग्रह के लिए समर्पित किया।

रुक्मणि ने राधा को अपने महल में रखा जैसे भगवान ने सुदामा को।

परमानंद केवल करेंगे वर्णन

शिव देवी को करेंगे मुक्त
अहम और अहंकार से
कथा लम्बी है जो इसमें छुपी है
धीरता भोलेपन तथा नम्रता से सती ने
किया खुद को अग्नि में भस्म
बांसुरी वादन की आवाज सुनाई दी
यद्यपि उस की तान आई बहुत दूर से।
लगती थी बांसुरी बज रही समीप कहीं
मोहित होकर तान की मधुरता पर बालाएं निकली घर से।

दौड़ी माताएं भी पीछे-पीछे
कृष्ण के सिवा और कोई नजर आता नहीं
कृष्ण ही कृष्ण के प्रेम में है लीन
दूसरा कोई नहीं बस वो ही। वह चारों और आते है नज़र
मोहित होकर बांसुरी की मधुर तान पर
पीछे-पीछे तुम्हारे सारे बंधन तोड़कर दौड़ पड़ी वे गोपियां
खुद को भुला कर अनुगमन करती हैं तुम्हारा
तुमको सिर्फ तुमको ही ढूंढती है गोपियां
पूर्ण सत्य जिनका वर्णन वैदान्तिक और दार्शनिक कविताओं में है।
जीते जी मरना खुद में खेल है
खुद को भुला कर मिटा कर
खुद को पाना ही अन्तिम सत्य है
अपने विचारों पर अपने क्रियाकलापों पर
मनन करना ही सहज विचार है।
कोई तुम्हें शिव, कोई तुम्हें शक्ति कहे
तुम किससे कब उत्पन्न हुए?
नहीं तुम अधीन, कारण और परिणाम के
दिन और रात सर्वदा तुम परमानन्द हो
केवल प्रकाश ही प्रकाश हो।
वह अद्वैत है।
मैं तुम या वह इसका उसमें कोई स्थान नहीं। वहीं चारों और व्यापत है
यही पूर्ण सत्य है

जो संसार में द्वैत दिखाई देता है सत्य होते हुए भी सत्य नहीं है खुद में उसको पाना ही पूर्ण सत्य है यही अद्वैत वाद है।

शारीरिक कष्ट के अन्तिम दिनों में भी उन्होंने योगासन नहीं त्यागा। एक नाम 'ओम' का उच्चारण करते हुए उन्होंने देह त्याग दी। ऐसे तत्वज्ञानी संतकवि का कश्मीर सदा ऋणी रहेगा। उनकी पुण्य स्मृति को प्रणाम।

O

लद्दाखी साहित्य : संदर्भ नये-पुराने

❑ नवांग छिरिंग

लद्दाखी भाषा व साहित्य का प्राचीन काल से लेकर आज तक अपना एक स्वतंत्र तथा गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। इसका कारण यह है कि लद्दाख के लोग बाहरी दुनिया के घटनाचक्र से भिज्ञ होते हुए भी अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाज को अभी नहीं भूले। यहां की भाषा व साहित्य का प्राचीन काल से लेकर आज तक अपने रूप में बने रहने तथा निखरते रहने का सबसे बड़ा कारण है।

भारत की स्वतंत्रता के पूर्व तथा बाद भी लद्दाख की धरती पर हमने कई परिवर्तन देखे। अनेक प्रकार की संस्कृतियों का आगमन हुआ तथा जमने की कोशिशें रहीं। लेकिन लद्दाख के लोगों ने इन सबसे ऊपर उठकर अपनी भाषा व साहित्य की महानता को कभी खोने होने नहीं दिया। 20वीं शती के मानव के सामने ये अनोखा उदाहरण पेश हो रहा है कि लद्दाखी भाषा व साहित्य का प्राचीन काल से लेकर आज तक अपना एक अस्तित्व रहा है तथा रहेगा।

जब हम लद्दाख के प्राचीन इतिहास को समझने का प्रयत्न करेंगे तो हमें यह मालूम होगा कि लद्दाख कई शताब्दियों तक स्वतंत्र राजतन्त्र रहा है। अवश्य ही समय-समय पर पड़ोसी शासकों ने अपना प्रभाव यहां जमाने की कोशिशें की हैं। लेकिन वे असमर्थ रहे। इस सबका श्रेय हमें उस काल के शासकों को देना पड़ेगा जिन्होंने तन मन धन से अपने इस धर्म, भाषा व साहित्य के ऊपर किसी का साया न पड़ने दिया। भले ही राजनैतिक तौर पर लद्दाख बहुत बड़ा ही क्यों न हो। भाषा व साहित्य की दृष्टि से प्राचीन काल से आज तक एक सी ही स्थिति बनाये हुए है। जो अपने में बहुत बड़ी बात है।

धार्मिक दृष्टि से अगर हम देखें तो लद्दाख कालान्तर से आज तक बौद्ध धर्म के महायानी शाखा का सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। पड़ोस के देश तिब्बत जिसे हम महायानी धर्म व संस्कृति का केन्द्र बिन्दु मानते थे, चीन द्वारा अपने कब्जे में करने के उपरान्त विश्व में महायानी सम्प्रदाय में लद्दाख ही एक ऐसा प्रदेश रह गया है जिसे हम हरेक दृष्टि से तिब्बत का उत्तराधिकारी मान सकते हैं। तथा इसी कारण ही तो कहने वालों ने लद्दाख को छोटा तिब्बत या "पश्चिम का तिब्बत" कहा है। क्यों कि तिब्बत व लद्दाख दोनों के एक ही तरह के धर्म, संस्कृति, भाषा व साहित्य फले फूले हैं। तथा दोनों देशों के विद्वानों, विचारकों ने इस भाषा व साहित्य को सम्पन्न बनाने के लिए महान प्रयास किये हैं।

जब लद्दाख की भाषा व साहित्य पर चर्चा करते है तो अवश्य ही हमें 9वीं शताब्दी से लेकर आज के इतिहास के पन्नों पर भी नजर दौड़ानी पड़ेगी तथा इसे स्वीकार करना होगा कि प्राचीन काल से लेकर आज तक इस भाषा व साहित्य का अपना निराला इतिहास रहा है, इसी लिये आज का प्रगतिशील मानव इस भाषा व साहित्य को पूर्व के मुकाबले में आज और

भी अधिक अच्छी तरह समझ रहा है। तथा इसका अध्ययन कर रहा है।

अगर हम साहित्य को मुख्यतः धार्मिक दृष्टि से देखें तो इसे दो खण्डों में विभाजित कर सकते है। "क" तथा स्तानछोरा"। यहां "क" का अर्थ है आज्ञा अर्थात स्वयं महात्मा बुद्ध द्वारा कही गयी बातें। "स्तानछोरा" का अर्थ है शासन। यहां शासन का अर्थ है बाद में हुए बौद्ध विद्वानों द्वारा लिखी गयी टीकाएं। इसे हम दूसरे ढंग से कहें तो बौद्ध साहित्य के दो महाग्रन्थ है। काञ्जुर और तन्जुर। काञ्जुर में 108 ग्रन्थ हैं तथा ताञ्जुर में 200 से अधिक ग्रन्थ हैं। ये दोनों ग्रन्थ हमारे साहित्य की एक ऐसी देन है जिसके कारण लद्दाखी साहित्य का क्षेत्र सीमित न रहकर सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसी कारण भाषा व साहित्य की दृष्टि से हम सम्पूर्ण हिमालय के क्षेत्र व देशों को एक मान सकते हैं क्योंकि सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र पर बौद्ध धर्म की महायानी संस्कृति व साहित्य का प्रभाव है तथा सभी इस भाषा की लिपि को लिख व पढ़ भी सकते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि लद्दाख की भाषा व साहित्य तो तिब्बती है। ये कहना भी सही है। क्योंकि इतिहास यह कहता है कि लद्दाख ने अपने को कभी भी अपने तक सीमित नहीं रखा। अतीत में भी यहां तरह तरह की संस्कृतियों का संगम होता रहा। लेकिन जबसे यहां बौद्ध धर्म ने अपनी छाप छोड़ी तभी से आज तक लद्दाख के लोगों ने इसी की प्रगति में अपना हित समझा। यही कारण है कि आज भी लद्दाखी साहित्य पर पूरी तरह से महायानी संस्कृति की छाप है। जिसका प्रभाव यहां तिब्बत से आया।

जिस प्रकार प्राचीन काल में नालन्दा, व तक्षशिला जैसे विद्या मन्दिर बौद्ध धर्म की शिक्षा का केन्द्र रहे हैं तथा लद्दाख[1] जैसे प्रदेशों से भी विद्यार्थी पढ़ने को जाते थे ठीक उसी के अनुरूप बाद में तिब्बत में इस पुङ, सेन, गल्दन व टाशी ल्हुन्पो जैसे कई महाविद्यालय अस्तित्व में आये। जहां से बौद्ध धर्म व साहित्य के प्रसार व प्रचार के लिये सम्पूर्ण हिमालय के क्षेत्रों से इन विद्या केन्द्रों पर लोग अध्ययन के लिए गए। ये महाविद्यालय जब तक अपने अस्तित्व में रहे तब तक लद्दाख से भी भारी संख्या में विद्या प्रेमी ज्ञान अर्जन के लिए जाते रहे। इन्हीं कारणों से हम लद्दाख की संस्कृति व साहित्य को विशाल व गहन मान सकते हैं, तथा इस युग में हिमालय के कुछ भाग तथा नेपाल, सिक्किम भूटान तथा कुछ अन्य क्षेत्रों को छोड़कर लद्दाख ही एक ऐसा प्रदेश है जिसके कन्धों पर इस सम्पूर्ण साहित्य व संस्कृति को जीवित रखने का भार आ पड़ा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि वास्तव में तिब्बती प्रभाव कब और किस समय लद्दाख की भाषा व साहित्य के ऊपर पड़ा। प्रसिद्ध इतिहासकार ड्रेविड स्नेलग्रो[2] के अनुसार "1000 ई.पू. में लद्दाख में तिब्बती भाषा व संस्कृति का प्रसार पासींग में सम्पूर्ण बल्तीस्तान तक हुआ। जो कि 8वीं शताब्दी में तिब्बती साम्राज्य का पश्चिम भाग था जिसमें आज कल का चीन तुर्किस्तान भी है। लद्दाख अकेला ही तिब्बती संस्कृति के विस्तार से 10वीं शताब्दी तक प्रभावित हुआ नहीं लगता लेकिन तभी से पश्चिम तिब्बत की बोली लद्दाखियों की आम बोल-चाल की भाषा बन गयी। बल्ती लोगों को जबरन कश्मीर के शासकों ने 15वीं शताब्दी

1. 2500 years of Buddhism, Publication Division, Govt. of India, 1971.

2. The cultural heritage of Ladakh Volume one Central Ladakh.

के आरम्भ में इस्लाम धर्म का अनुयायी बनाया। लेकिन बल्ती भाषा जो कि तिब्बती भाषा ही है आज भी पूर्व में तिब्बतियों के साथ सम्बन्ध को प्रमाणित करती है।"

चाहे जो भी हो भाषा,. धर्म व साहित्य की दृष्टि से वास्तविक जागरुकता तो 11वीं शताब्दी में ही आई, जब लामा लोछ़ावा रिन्छेन ज़ंगपो ने लद्दाख की भूमि पर पांव रखा। कहा गया है कि लामा लोचावा रिन्छेन ज़ंगपो ने सम्पूर्ण लद्दाख में 108 से भी अधिक मन्दिर व गढ़ों का निर्माण किया जिसमें से कुछ आज भी सुरक्षित हैं। जिसमें अलची छोस्कोर विहार मुख्य हैं। रिन्छेन ज़ंगपो अपने समय के माने हुए महापण्डितों में से थे। कहा गया है कि आपने सैकड़ों ग्रन्थों का संस्कृत से तिब्बती में अनुवाद किया जिसमें कुछ चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ भी हैं। आप पांच महाविद्याओं के प्रकाण्ड विद्वान थे तथा बहुत सारी रचनाएं कीं।

लामा लोछ़ावा रिन्छेन ज़ंगपों के बाद लद्दाख के धर्म व साहित्य के क्षेत्र में फकपा शेसरब का आगमन होता है। आपका जन्म 12वीं शताब्दी में लद्दाख के जंस्कार इलाके में हुआ। आप कश्मीर अध्ययन के लिए गए तथा बाद में जंस्कार के करशा गोन्पा का निर्माण किया जो कि आज जंस्कार का सबसे बड़े गोन्पा है। यह कहा गया है कि आपने तर्क विद्या सम्बन्धी कई पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद किया। जंस्कार ने कुछ और विद्वानों को जन्म दिया जिनमें बल्ती लोछ़ावा का नाम भी है। इन विद्वानों ने भाषा, धर्म व साहित्य के लिए बहुत सारे कार्य किए हैं लेकिन इनके जीवन तथा कृतियों पर किसी प्रकार का सन्धान न करने से उनके द्वारा किए गए कार्यों के बारे में हमारे पास बहुत कम जानकारी है।

लद्दाख के सबसे अधिक प्रभावशाली राजा सेङ्गे नमग्याल (1590-1620) के शासन काल में लद्दाखी साहित्य के क्षेत्र में एक और विद्वान अवतारी लामा का आगमन होता है, जिनका नाम लामा स्तागछंग रस्पा था। वैसे आपका जन्म तिब्बत में हुआ लेकिन कार्य क्षेत्र लद्दाख रहा। आपके ज्ञान तथा पांडित्य से प्रभावित होकर राजा नमग्याल ने आपको अपना राज गुरू बनाया। तथा आपकी छत्रछाया में ही स्वागछंग रस्पा ने हिमिस गोन्पा, चेमरे गोन्पा आदि की नींव रखी तथा बाद में आप लद्दाख के सबसे बड़े गोन्पा हिमिस के प्रधान लामा बने। आपकी जीवनी, पद्यों का संग्रह यात्रा की डायरी तथा कुछ अन्य रचनाएं आज भी सुरक्षित हैं। कहा गया है कि आपने मक्का-मदीना तक की तीर्थ यात्राऐं भी कीं।

राजा देलेग्स नमग्याल (1640-1680) के शासन काल में जंस्कार ने एक और महापण्डित को जन्म दिया जिनका नाम था डुपछेन नवांग छेरिंग था। आपका जन्म 1717 ई० में मध्य जंस्कार के अतीङ्ग नामक गांव में हुआ। आपकी माता का नाम फगमों डोलमा तथा पिता का नाम चङ्छुप सेम्पा था। आपकी रचनाऐं गद्य तथा पद्य दोनों में हैं। लेकिन आज तक आपकी रचनाएं व कृतियां आम जनता तक नहीं पहुंच पायी हैं तथा हमारे लिये सामग्री के अभाव से आपके बारे में ज्यादा कुछ कह सकना कठिन प्रतीत होता है।

लद्दाख 1834 में जम्मू महाराजा गुलाब सिंह के राज्य का अंग बनने के बाद साहित्य के क्षेत्र में लामा छुलरिम निमा (1790-1865) का आगमन होता है। आपका जन्म लेह से 60 कि०मी० की दूरी पर स्थित सस्पोल गांव के खचेपा घराने में हुआ था। आपके पिता का नाम लोवजंग टाशी तथा माता का नाम जोमस्कित था। आप बचपन से ही धर्म व ज्ञान प्रेमी

थे। तथा बाद में रिज़ोग गोन्पा की स्थापना भी की। आप जनरल जोरावर सिंह के लद्दाख पर आक्रमण के समय जागरूक थे तथा आपने लद्दाख के धर्म व राजनीति दोनों क्षेत्रों में परिवर्तन लाए। आपकी जीवनी तथा अन्य कृतियां रिज़ोग गोन्पा में सुरक्षित हैं जोकि 500 से अधिक पृष्ठों में फैली हैं। इनकी रचनाओं से हमें उस काल की लद्दाख की राजनीति धर्म रहन-सहन आदि के बारे में अच्छी जानकारी मिलती है ये कहा गया है कि आपने कैलाश पर्वत तथा मानसरोवर झील की भी तीर्थ यात्राएं कीं।

इनके बाद हम लद्दाख के साहित्य के क्षेत्र में रिन्पोछे लोबज़ंग छुलरिम छोस्फेल का नाम नक्षत्र की तरह चमकता हुआ पाते है। आपका जन्म रिज़ोग गोन्पा के नजदीक के गांव टागथंग में हुआ था। आपके पिता का नाम स्तार्नाजन तथा माता का नाम जोरजोम था। आप एक अवतारी लामा थे। तथा बाद में आप रिजोग गोन्पा के प्रधान लामा यानी रिन्पोछे (रत्न) बने। बचपन से ही आप तीव्र बुद्धि के थे। तथा आप शिक्षा प्राप्त करने के लिए तिब्बत गए। आपकी कृतियों में गद्य, पद्य तथा स्तुति गीत आदि हैं। आप एक महाकवि के रूप में लद्दाखी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे। कहा गया है कि आपका संस्कृत का ज्ञान इतना विशाल था कि आप अपने समय के संस्कृत विद्वानों से संस्कृत में ही वार्त्तालाप करने की क्षमता रखते थे। इसके अलावा आप एक अच्छे गायक तथा संगीतज्ञ भी थे। आपको वीणा बजाना तथा मधुर स्वर से गाना भी आता था। कहा गया है कि आप अपनी इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए जो (एक प्रकार का लद्दाखी बैल) याक जैसे जानवरों के सींगों की वीणा बनाकर प्रार्थना आदि इसी की धुन पर करते थे। आप पांच महाविद्याओं के भी ज्ञाता थे। चाहे जो भी हो आपने हरेक विषयों पर कलम चलायी तथा आज भी आपकी रचनाऐं तथा साहित्य जो कि बड़ी संख्या में मौजूद है जो आपके पांडित्य का प्रतिनिधित्व करता है।

आधुनिक युग में भी लद्दाख में कई ख्याति प्राप्त साहित्यकार हुए हैं, जिनके फलःस्वरूप लद्दाखी साहित्य को नयी दिशा मिलने में सहायता मिली है। इन साहित्यकारों में हमें सर्वप्रथम गेशेस येशे तोन्डुप (1897-1980) का नाम लेना होगा। वैसे आपकी कृतियां कम हैं फिर भी जो कुछ आपने लिखा वह लद्दाख के साहित्य के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाने योग्य है। आपके ही अनथक परिश्रम के फलस्वरूप हाईस्कूल तक की लद्दाखी भाषा की पाठ्य पुस्तकें बनीं। जिसके माध्यम से आज लद्दाखी भाषा के विद्यार्थी हाईस्कूल कक्षा तक की परीक्षाओं में लद्दाखी ले सकते हैं। आपके द्वारा लिखित कई लेख राज्य, अकादमी की लद्दाखी भाषा की पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। जिनमें 'प्रमाण विद्या तथा उसका विकास' लद्दाखी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, लेह तथा लद्दाख की उत्पत्ति, रिन्पोछे, लोवज़ंग छुलटिम छोस्फेल तथा उनकी रचनाएं तथा भाव्यदर्श की पुस्तक मेलोंङमा आदि प्रमुख है। इसके अलावा भी आपने लद्दाख के इतिहास पर एक पुस्तिका लिखी है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर सन् 1976 में राज्य अकादमी ने आपको रोब-आफ ऑनर की उपाधि से सम्मानित किया है। आपका दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य में जनवरी 1980 में 80 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हुआ।

स्वर्गीय गेशेस जी के बाद लद्दाख के आधुनिक साहित्यकार श्री राशी रबग्यास का नाम आता है। आपका जन्म सन् 1927 में लेह से 50कि०मी० दूर स्थित सकटी गांव में हुआ था।

आप एक सफल कवि, लेखक, गीतकार, गायक तथा आलोचक हैं। आपने सैंकड़ों कविताएं, गीत, दर्जनों लेख व पुस्तकों का संकलन किया। आपकी संकलित पुस्तकों में लद्दाखी लोकगीत प्रथम खण्ड भी है, जिसे सन् 1970 में अकादमी ने प्रकाशित किया। आपके प्रकाशित लेखों में लद्दाखी भाषा व लिपि लद्दाख की संस्कृति, लद्दाखी धुन व संगीत का चलन, महाकाव्य लिङ केसर का परिचय तथा लद्दाख के रीति-रिवाज आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा भी आपके अन्य कई प्रकाशित, अप्रकाशित गीत व लेख भी हैं। आपकी शैली अपने ढंग की है तथा आपकी रचनाएं साहित्य प्रेमी बड़ी लगन से पढ़ते है। इन्हीं कारणों से आपको भी गेशस की तरह सन् 1994 में राज्य अकादमी ने रोब-आफ ऑनर प्रदान किया।

इसके बाद श्री सोनम स्वायपदन गेरगन का नाम लेना होगा। आपकी कृतियों में लद्दाख का इतिहास जो 650 पृष्ठों में है मुख्य है। वैसे लद्दाख के इतिहास पर इस पुस्तक से पूर्व आपके स्वर्गीय पिता योसेफ गेरगन, जो कि अपने समय के विद्वानों में से थे, ने भी कलम चलायी थी लेकिन वो अधूरी हालत में छोड़ इस दुनिया से चले गए। योसोफ गेरगन एक सफल अनुवादक भी थे। कहा जाता है कि आपने बाईबल का अंग्रेजी से लद्दाखी में अनुवाद किया है। इसके अलावा भी अन्य बहुत से साहित्यकार इस साहित्य को सम्पन्न बनाने में लगे हैं। जिनमें ठीक से काछेन लोवज़ंग जोतपा, गेरगन सोनग, आचार्य लोवज़ंग जमस्पाल, गेलेग जमयंग उचाक्तछन, गेलोग थुपस्थान पलदन, श्री राशी फुन्छोक आदि के नाम अग्रणी हैं। इनके अलावा सर्व श्री रिन्छेन तोण्डुप, श्रीमती राशी छोमो, श्री छेवांग रिग्जिन, श्री छेरिंज नारेनू फुन्छोक छेरिंग व मोरूप नमग्याल आदि प्रमुख गीतकारों व लेखकों में से हैं।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए लद्दाखी भाषा व साहित्य का भविष्य उज्जवल है क्योंकि देश के कुछ ही को छोड़ अन्य प्रमुख विश्वविद्यालयों में इस भाषा की पढ़ाई का समुचित प्रबन्ध है। उदाहरण के तौर पर शान्तिनिकेतन, कलकत्ता, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, दिल्ली गोरखपुर, लखनऊ, पटना, बम्बई, चण्डीगढ़, पटियाला, व विदेशों में लन्दन जैसे प्रमुख विश्वविद्यालय हैं।

गत चार वर्षों से लद्दाख के साहित्यकार भी राज्य की अकादमी द्वारा आयोजित किए जा रहे वर्ष की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक व नाटक प्रतियोगिता आदि में भाग लेने लगे हैं। इस तरह तीन वर्षों के अन्दर ही पांच लद्दाखी लेखक सर्वश्री जेलेग जमयंग ग्यालसन, श्री एस०एस०गेरमन, गेलोग थुपस्तान पलदन, गेरगन सोनग तथा श्री छेवांग लोप्पन को अकादमी के श्रेष्ठ पुस्तक-पुरस्कार मिले हैं। उसी तरह तीन वर्ष के अन्दर ही पांच लद्दाखी नाटककारों को अकादमी के वर्ष के श्रेष्ठ नाटक के पुरस्कार मिले हैं। इसके अलावा लेह में अकाशवाणी का केन्द्र कार्यरत है, जहां से कि मुख्य रूप से लद्दाखी में ही कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। इस केन्द्र के खुलने से अब लद्दाख के साहित्यकार एवं गीतकार अपने लेख एवं कविताएं रेडियो के माध्यम से भी आम जनता तक पहुंचा रहे हैं। अब तो इस भाषा के मुद्रणालय तथा टाइप-राइटर भी भारत में निर्मित होते हैं। तथा अन्य भाषाओं के टाइप-राइटरों की तरह मिलने लगे हैं।

इतना कुछ होते हुए भी, अभी भी, इस भाषा व साहित्य को अपना प्रतिष्ठित पद दिलाने के लिए बहुत कुछ करना शेष है। इनमें से दो बातों पर कार्य जोरों से चल रहा है। प्रथम साहित्य अकादमी से राज्य की अन्य दो भाषाओं डोगरी व कश्मीरी की तरह लद्दाखी को

भी मान्यता दिलवाना, दूसरा राज्य के विश्वविद्यालयों में इस भाषा की उच्च शिक्षा प्राप्त करने की समुचित व्यवस्था करवाना। इस प्रकार अब वह दिन दूर नहीं जब हम लद्दाखी भाषा को अपने गौरवपूर्ण पद पर सुशोभित हुआ देखेंगे।

O

राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है

कि हम सब का लक्ष्य एक हो

—महात्मा गाँधी

कविताएं

एक पहाड़ी यात्रा से लौटकर

❑ महाराज कृष्ण संतोषी

(1)

बड़े रास्तों पर
बरसों चला
पर पहुंचा कहीं 'नहीं'
तुम्हारी पगडंडियों पर
कुछ दिन क्या घूमा
ऊंचाई को नाप लिया।

(2)

जब दोस्त
बेहद बातूनी होने लगे
कितना सकून देता है
खिड़की से देखना बाहर
पहाड़ की तरह
दरअसल
भाषा से घायल
लोगों के लिए
ये पहाड़ी ही
एक मात्र विकल्प है।

(3)

यहां खिड़कियां
चांद से बातें करती हैं
दरवाज़ों से गले मिलती हैं
हरियाली
और पेड़ गुनगुनाते हैं रात भर
शुक्र है
इस पहाड़ी गांव में
देर से पहुंचता है अख़बार

(4)

इन कुछ दिनों में ही
कितना कुछ स्मरण हो आया मुझे
जैसे दूर कहीं निर्जन में
आग से उठता धुआं

जो लोक-कथाओं में
कितने ही भटकते हुए राजाओं को
प्रसन्नता से भर देता था!
जैसे बचपन में
धूप के लिए
आकाश में किसी तारे को
बंदी बना लेना
और धूप निकलते ही
उसे मुक्त कर देना!
जैसे अपने प्रेम के लिए
किसी पवित्र पेड़ से
मनौती का धागा बांधना
और फिर धागा भूल जाना
जैसे वर्षा में
अपने इष्ट देव के पास
जलता हुआ दिया ले जाना!
कितना कुछ जिया हूं मैं इन दिनों
कभी भटकता हुआ राजा बना
कभी किसी का बंदी तारा हुआ
कभी बना किसी के प्रेम का धागा
और कभी बारिश में जलाया गया दिया।

(5)

पहाड़ ने देखी
मेरे बैग में कुछ किताबें
और हंस दिया
सारे जंगल को
अपनी हंसी में शमिल करता हुआ
पहाड़ ने देखे
मेरे सारे नोट्स
और हंस दिया तन्हा
पहाड़ ने देखी
मेरी आत्मा में सक्रिय चालाकी
और भूल गया हंसना!

○

जाड़े में एक प्रेम कविता

जब हम एक दूसरे से
विदा ले रहे थे
आकाश पर
बर्फ-बादल एकत्र हो रहे थे
मैं ने तुम्हें कहा
इस मौसम में
सिर्फ़ प्यार किया जा सकता है
या फिर आत्महत्या।

तुम ने कहा
सिर्फ प्यार क्यों नहीं?
सुनकर ऐसे लगा
जाड़े के इस मौसम में
किसी ने मेरे सामने
अलाव जला दिया

बर्फ-बादलों से भरे
आकाश के नीचे
हम जब एक दूसरे से
विदा ले रहे थे
यूं लगा—
पहाड़ों की बर्फ़
नदियों का जल
समुद्र की लहरें
हमें देखते हुए कह रही हैं
प्यार चंद्रमा का चुम्बन है
और इस चुम्बन की यात्रा
बर्फ़ से आरम्भ होती है।

○

आये हो तो बैठो फागुन

❑ जितेन्द्र शंकर बजाड़

आओ फागुन, आए हो ते आओ बैठो, फागुन!
मगर न करना हंसी ठिठोली॥*॥

चूल्हे के बदले सुबह से
सांझ तलक आंतें जलती हैं।
वापस शहर नहीं जाने की
आंगन में बातें चलती हैं॥
मुझसी गंवई बहु क्या जाने
शहर का दंगा, कर्फ्यू, गोली॥*॥

यहां गांव में भी अब बातें,
पत्थर सी चोटें करती हैं।
चुन्नी ओढ़नी रूठी रूठी
आपस में ओटें करती है॥
रंग के बदले रक्त सनी अब
डरी-जरी ना आए होली॥*॥

भला नहीं लगता है फागुन,
भीगी पलकें रंग बिखेरें
लेकिन सोच रही हूं कैसे,
पाहुन तुमको वापस फेरें॥
तुम ही बांट सको तो बांटो,
मीठी बातें मिसरी घोली॥*॥
आओ फागुन
आये हो तो बैठो फागुन॥

"जो तुम चाहते हो . . ."

❑ अनिला सिंह चाड़क

वह जज़्बा खूबसूरत सा,
जो एक खूबसूरत नज़्म के सीने
में धड़कता है,
कई खौफनाक रिश्तों के चेहरों से
जूझता है,
यकीन है उस जज़्बे को कि,
जब भी वह नज़्म खुद को
गुनगुनायेगी,
वह पार कर ही लेगा,

रिश्तों की आंखों में फैले गर्म
रेत के समुद्र को
नाखूनों के असंख्य नुकीले जंगलों को,
दिलों में उमड़ती आग की नदियां को
और ठहर जायेगा सदा के लिए
कई हृदयों की हथेलियों पर पावन ग्रन्थ सा
कर देगा स्पन्दित रिश्तों की ठहरी हुई धड़कनें,
और महसूसा जायेगा,
किसी बिलखते बच्चे के गालों
पर स्नेहिल स्पर्श सा,

किसी भूखे के मुंह में रोटी सा,
किसी कुम्हलाये पौधे पर वर्षा की
फुहार सा,
किसी पथिक की सदियों से बाट जोहती
पदचाप सा,
किसी मां की सूनी गोद में बच्चे
की किलकारी सा,

जो तुम चाहते हो खुद भी कि
तुम्हारे उदास, बन्द कमरों में
बज उठें कई सोये जलतरंग

और कई सूरज आंखें मल कर
उठ बैठें,
तुम खोल देना उन बन्द कमरों की
खिड़कियाँ
जो ठीक सूरज के सामने
खुलतीं हैं
और ठीक उनके सामने भी नज़्म
खुद को गुनगुनाती है,
तुम एक टुकड़ा धूप का
लेकर
अपने चेहरों से मल लेना
और टुकड़ा नज़्म का लेकर

उसे सांसों में सरका कर,
बसा कर,
किन्हीं मासूम बच्चों के चेहरों से
मिलते-जुलते,
अपने जज़बातों के चेहरे बना लेना
और उनमें उस नज़्म सा
खूबसूरत दिल बसा लेना

जो तुम चाहते हो कोई सूरज
अंगड़ाई लेकर उठ बैठे,
जो तुम चाहते हो कोई सूरज
अंगड़ाई लेकर उठ बैठे !

जंजीरें टूटेंगी इस तरह

❑ शेख मुहम्मद कल्याण

प्रेम बसा हो जहां
ढूंढता हूं शहर एक
एक ही मिल जाए तो काफी है
खोजते हुए पाता हूं अपने को
छटपटाता
यह छटपटाहट नफरत की है

छटपटाते हुए अपने को भागते पाता हूं
इसी दौड़ में लगता है
कि नहीं
भाग कहां रहा हूं मैं
वहीं तो हूं, कब से, वैसा ही।

इसी खड़ंत में
उतरता है बोध
कि नहीं उतरेगा नीले आकाश से मसीहा कोई
तोड़नी है परम्परा यदि
तो हमीं तोड़ेंगे
वही तोड़ सकेगा जंजीर
लगेगा जिसे कि पांव उसके
जकड़े हैं जंजीरों में।

उठो मेरे भाई उठो

उठो मेरे भाई उठो
सम्भालो अपनी-अपनी कुदाल
सूरज ने विद्रोह कर दिया है
जितना भी हो सके
इसे दफन कर देना चाहिए।

विद्रोह दफन होता रहा है सदा
ऊंची लम्बी मीनारों के नीचे
अब के भी
यही होगा क्या?

ऐ, किसान !

लहलहाती फसल और उसकी चमक
बावजूद धूप, धूल, भूख के
नाचतें हैं शब्द गीतों में।

झुलसती-ठिठुरती घड़ियों में भी
उड़ान भरी जा सकती है, देखो ...
तुमने मुझे जोश समझाया है
और तुम्हीं से मिली है राहत इस पल
ऐ किसान !

यह पथ, बंधु नहीं

❑ देवव्रत जोशी

इसी रास्ते से गुज़रा था पतझड़
वसंत को पूरी निर्दयता से रौंदता
यही वह रास्ता है—
जो तुम्हारे जाने के बाद
बबूल और नागफनियों का जंगल हो आया.
रास्ता मुड़ता नहीं
वह सिर्फ चलता है तुम्हारी तरह!
गोकुल हो या मथुरा या द्वारका
राजपथ हो कि जनपथ
किसी पहचान से रास्ते का ताल्लुक नहीं।
पतझड़ से रौंदे रास्ते को देखता है—
निदाघ अपनी-अग्निपीठ से
रास्ता तब भी असंज्ञ, अनजान
चलता जाता है : पीछे मुड़कर देखना
न रास्ते की आदत रही न तुम्हारी
बांसुरियां मौन के क्रदन में डूबी रहें
भौरों को दिये जाते रहें उपालम्भ,
मधुवन के पुष्प-मुकुट झर जायें,
मुड़ते नहीं रास्ते और उन पर
चलते तुम्हारे कृष्ण चरण!
रेत में उगे बबूल-वनों से गुज़रती
आकांक्षाओं की अक्षौहिणियां हांफती हैं
कांपती है गांडीव की प्रत्यंचा
पथरा जाते हैं केलि सखियों के आंसू
एक वत्सल मातृहृदय—
सिसकता रह जाता है आजीवन
किंतु सारे असंभव घटित होने के बावजूद
रास्ता चुकता नहीं तुम्हारी तरह
चला जाता है निर्बाध
वसंत से रौंदा निदाघ से निर्लिप्त
जाने किस व्याध की प्रतीक्षा में
सहस्राब्दियों के बाद भी
तुम और यह पथ
बंधु नहीं किसी के।

○

नवम्बर मास में संवाद

❑ मोहन सपरा

नवम्बर मास
मुझे
बादलों से भरे आकाश की इबारत पढ़ने को
मजबूर करता है
क्योंकि मुझे बताया गया है–
कि इस मास में इक रोज़
मेरी मां ने
मुझे जन्म दिया था
सच, बादल गरजा . . . .

नवम्बर मास
मुझे दूर तक फैले नीले समुद्र में
डुबकियां लगाने को मजबूर करता है
क्योंकि मुझे याद है
कि इस मास में इक रोज़
मेरी प्रेमिका
मेरी पत्नी हो गई थी
सच, बादल बरसा . . . .

नवम्बर मास मुझे
अतीत की काली सुरंग में ले जाता है
क्योंकि मुझे बताया गया है
कि इस मास में इक रोज
मेरे दादा ने दम तोड़ा था
सच, बादल बरसा . . . .

सच है कि नवम्बर मास
हमेशा मुझे अकेला कर जाता है
फूल नहीं
कांटों से जूझने की कविता
लिखने के लिए मजबूर कर जाता है

और मेरी धमनियां
एक लड़ाई-मुद्रा में
ऐंठने लगती हैं।

इस देश का नक्शा
नवम्बर मास में
मुझे प्रेम की मादकता की याद नहीं दिलाता
बल्कि
दया का पात्र बना जाता है
शिकारी के सामने
दुम हिलाता
अपना आकार बदल लेता है
और संवाद शुरू हो जाता है।

सच, नवम्बर मास में संवाद
मेरी, पत्नी और दादा
के आसपास
घूमता-सा अनुभव करता हूं।
कविता में छिपने की कोशिश करता हूं
ताकि कविता
लौह-पुरुष बने
उठते हुए हाथ की तरह तने
रंग की तरह फड़फड़ाये
और सूर्य की तरह अर्थवान हो जाए।

दो ग़ज़लें

❑ 'निर्मल' विनोद

वो आएगा वादा है तुम द्वार खुला रखना
देहरी पे दुखी घर की इक दीप जला रखना
आएगा नहीं कैसे? नज़रों को बिछा रखना
बस, दिल में तड़प रखना, होंठों पे दुआ रखना
चेहरे को उठो धो लो, है गर्द जमी ग़म की
मुर्झाये हुए मुख पर, कुछ फूल खिला रखना
तितली के परों-जैसा, आंचल हो तेरे सर का
रंगीन बहारों-सी, घर-भर की फ़िज़ा रखना
एहसास न हो उसको, माहौल है बेग़ाना
जो गीत उसे भायें, आंगन में बसा रखना
झांकेगा तेरे घर भी, खुर्शीद का हरकारा
हर जानिब खिड़की का, पट कोई खुला रखना

(2)

अनमने क्या गीत गाएंगे
चुप लगाये रीत जाएँगे
आप कहिए, क्या सुनाएँगे
हम तो सबका दर्द गाएँगे
गीत होंठों पर सजाएँगे
हम नयी दुनिया बसाएँगे
कैद यद्यपि हम अंधेरों के,
रोशनी की धुन सुनाएँगे
हम जो सावन के नहीं अन्धे,
सब हरा कैसे बताएँगे
नीम कड़वी है, नहीं संदेह;
रक्त-शोधक है चबाएँगे
चल पड़े जिस रोज़ बुलडोज़र
राह के पर्वत हटाएँगे
एक दिन ऐसा भी आना है,
बुलबुले सब फूट जाएँगे
दमकलों की घंटियां सुनकर,
लोग खुद रास्ता बनाएँगे
चाँद जिस दिन टूट जाएगा
ज्वार गतियाँ भूल जाएँगे

○

ऐतिहासिक कथा

सूरज की तलाश में

❑ शिव रैना

सोलह जून, 1532 की घटना है। पंजाब के ऐतिहासिक कस्बा माछीवाड़ा के हरे-भरे खेतों के साथ-साथ, एक बलिष्ठ नवयुवक अपनी धुन में चला जा रहा था। उसके भरे-भरे गुलाबी चेहरे पर खूब घनी दाढ़ी मूंछें थी। उसके चेहरे पर नूर था। बाहें तलवार की तरह लम्बी थीं। उसका चेहरा गरमी से तमतमाने लगा था। वह आमों के एक भरपूर महक रहे बाग में से होकर निकल रहा था कि पेड़ों के झुरमुट के पीछे से, लड़कियों की खिल-खिलाहट सुनाई दी।

नवयुवक के कदम वहीं रुक गये। उसे लगा, लड़कियां भरी दुपहरी में उसी पर हंसी होंगी। दम साधे, नवयुवक खामोशी से लड़कियों की बातें सुनने लगा।

"क्यों 'भागो'! यह मक्खन-सी काया का फूल क्या यों ही मल-मल कर सहेजती रहेगी या कभी किसी देवता पर भी चढ़ाएगी? अठारह साल की तो हो चली है तू, मर जानी!"

"अये-हये, तो कोयले-जैसे तेरे कलेजे में क्यों होल उठ रही है, रण्डी? दिल है या कोई मौसमी भुट्टा, कि जिस किसी को चाहूं, भून कर दे दूं?"

"अरे, वाह री, मेरी छमकछल्लो! रहना झोंपड़ी में ख्वाब महलों के! तू क्या राजा-महाराजा की आस लगाए बैठी है, मेरी चन्नों रानी?"

"बेशक, मेरी लाडो। माली की बेटी जरूर हूं, मगर मैं सूरजमुखी की नहीं, साक्षात् सूरज की तलाश में हूं . . . ।"

नवयुवक की उत्सुकता चरमसीमा पर पहुंच गयी। दबे-पांव, नवयुवक ने आम की सघन शाखाओं में से झांका। तालाब का दृश्य देखकर, उसके दिल की धड़कनें तेज़ हो गईं। पीतल की दो गागरों के पास, सत्रह-अठारह वर्ष की दो पंजाबी लड़कियां खड़ी थीं। एक का रंग कोयल की तरह काला था और दूसरी का मक्खन की तरह गोरा-चिट्टा। उनके बदन सांचे में ढले थे। मलमल के सूट, उनके मरमरीं बदन पर चिपक गए थे। वे कपड़ों-समेत तालाब में नहाई थीं। घने लम्बे बालों से मोती टपक रहे थे। नवयुवक को गरमी के तेवर भूल गये। वह कुछ और एड़ियां उठा कर, तालाब का मनोरम दृश्य देखने लगा। लेकिन इसी प्रयास में, पंजों के नीचे से गीली-जमीन दगा दे गई। नवयुवक संभलने के बावजूद, तालाब के किनारे तक फिसलता चला गया।

लड़कियों की आश्चर्य से चीखें निकल गयीं। लेकिन नवयुवक की कजरारी आंखों और छबीले बदन के सम्मोहन ने, दोनों लड़कियों को चमत्कृत-सा कर दिया। काली लड़की ने तुरन्त पीतल की गागर पतली कमर पर रखी, और घबराहट तथा व्यंग्य-मिश्रित स्वर में कह उठी—"ले, संभाल अपना सूरज, भागो!"

युवक आंखें फाड़े, भागो को देख रहा था। भागो ने भी उसे खूब गौर से देखा, जैसे पहिचानने की कोशिश कर रही हो। फिर भागो ने दोनों हाथ कमर पर रखकर, नवयुवक से कहा, "तुम पेड़ पर आम खा रहे थे या हमें नहाते देख रहे थे?" स्वर में निर्भीकता और गहरी मिठास थी।

नवयुवक ने ईमानदारी से कहा—"मैं न तो आम खा रहा था और न तुम लोगों को नहाते देख रहा था। मैं सिर्फ एक चेहरा देखना चाहता था।"

"क्यों?" अपलक घूर कर, लड़की ने प्रश्न किया।

"तुम्हारी आवाज़ में जादू और ख्यालों के परवाज़ से खिंचकर।" नवयुवक मुस्कराया।

लड़की ने लजा कर निगाहें झुका लीं। नवयुवक की आंखों के लाल डोरों से बंधना, कठिन लग रहा था बेचारी को।

नवयुवक ने पास आकर पूछा—"यहीं रहती हो क्या?"

"हूं।" भागो ने सिर हिलाया।

"मैं यहां पहली बार आया हूं। क्या तुम मुझे माछीवाड़ा के लोगों के बारे में बताओगी, खूबसूरत लड़की?" नवयुवक ने ज़रा गंभीर स्वर में कहा।

"क्यों?" लाल-भभूका होकर, लाज से सुकचाती भागो ने, दो बादामी आंखें ऊपर उठाते हुए पूछा।

"इसलिए, कि तुम पूरे इलाके में मुझे सबसे बाहिम्मत, हसीन और ईमानदार लड़की लग रही हो।" नवयुवक अपनी पेशावरी-चप्पल झाड़ते हुए बोला।

"मगर तुम माछीवाड़े के बारे में क्यों जानना चाहते हो?" काफ़ी खुश होकर, लड़की ने प्रश्न किया।

"तुमसे छुपाना बेकार है अब।" नवयुवक भागो के कुछ और पास आ गया। चमेली के फूलों की एक तेज खुशबू से, भागो के दिलो-दिमाग महक उठे। नवयुवक ने धीमे स्वर में बताया, कि वह एक सरकारी गुप्तचर है, और वह सिर्फ यह जानने आया है, कि जनता को कौन-कौन लोग तंग कर रहे हैं?

"भागो समझदार थी। नवयुवक के रोम-रोम से शराफत और प्रतिभा टपक रही थी। भागो ने तीन क्रूर जमींदारों के नाम उसे बताए। ये तीनों आदमी, उस इलाके के लिए यमदूतों से कम न थे।

"शुक्रिया" कहकर नवयुवक चला गया, तो काली-कलूटी सहेली ने न जाने कहां से टपक कर, भागो को आंख लड़ने की बधाई दी। भागो ने कृत्रिम क्रोध से कहा—"क्या बके जा रही है, नासपीटी? वह तो कोई राहगीर था। सराय का रास्ता पूछ रहा था मुझसे।"

और फिर, लगातार दस दिनों तक, वह 'राहगीर' भागो से सराय का पता पूछता रहा। दोनों बहुत निकट आ गये थे। इसी बीच, पूरी छानबीन के बाद, तीनों क्रूर जमींदारों को कठोर दण्ड दे दिया गया था।

ग्यारहवें दिन, उसी तालाब के किनारे, नवयुवक ने भागो की चूड़ियों से खेलते हुए, कहा, "तुम मुझे 'सूरज' मत कहा करो, भागो।"

"फिर क्या कहूं? तुम अपना असली नाम तो बताते ही नहीं हो।" भागो की काली आंखों सजल हो गयीं। बहुत सुन्दर और मासूम लगने लगी थी वह। सिन्दूरी-चेहरे पर प्रेम की स्वच्छ आभा थी।

अत्यधिक भावुक होकर, नवयुवक ने अपने चौड़े सीने पर अंकित, एक विशेष चिन्ह दिखा कर, कहा—"तो सुनो, भागो! में "सूरज" नहीं, हिन्दुस्तान का शहंशाह शेरशाह सूरी हूं . . . . .।"

ये दुर्लभ शब्द, भागो के संक्षिप्त-जीवन में सुनाई देने वाले, अंतिम शब्द सिद्ध हुए।

O

हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीयता का प्रचार है।

— नेताजी सुभाष

खाली दिन

❑ अमरेंद्र मिश्र

मेरे हाथ में रविवार का ताज़ा अखबार था और मैं शहर में घटी पिछले दिन की घटना-दुर्घटना का जायजा ले रहा था। मुझे अखबार में छपी खबरों पर न तो गुस्सा आ रहा था, न ही चिंता हो रही थी। मैं नहीं मानता कि अखबार में किसी समस्या के बारे में कोई खबर छाप दी जाए और आने वाले दिनों में उसका समाधान हो जाए। मैं अखबार में पिछले हफ्ते से एक युवक का पत्र पढ़ता आ रहा हूं कि कुछ लोग बेवजह अपनी जान के पीछे पड़े हुए हैं। घर में चार छोटे भाई और दो जवान बहनें हैं। वह पंजाब नेशनल बैंक में काम करता है। उसने अपनी आत्मसुरक्षा के लिए स्थानीय पुलिस स्टेशन में रपट दर्ज करवायी है लेकिन उसकी किसी ने नहीं सुनी। उस युवक का पत्र लगातार कई अखबारों में मैंने पढ़ा लेकिन इधर उसका पत्र पढ़ने को नहीं मिलता। तो क्या सचमुच उसके सहित उसके परिवार वालों की किसी ने हत्या कर दी?

आज के अखबार में हत्या की खबरें ज्यादा तादाद में छपी हैं। पूरे अखबार में हत्या की सात खबरें प्रकाशित हुई हैं। कुछ दहेज-सम्बन्धी खबरें हैं। अखबार में और मैं इस कदर उलझ गया कि यह भूल ही गया, कि आज छुट्टी का दिन है और मुझे अपने एक नजदीकी रिश्तेदार से मिलने जाना है और लौटते वक्त शापिंग वगैरह करते हुए आना है।

पता नहीं क्यों मैं उस नौजवान के विषय में लगातार सोच रहा था जिसकी आत्मसुरक्षा का आवेदन अब अखबारों में नहीं छप रहा है। मुझे अपनी भावुकता पर थोड़ी देर के लिए हंसी आई थी कि शहर में रोज जाने कितनी ही हत्याएं होती रहती हैं, फिर मैं सिर्फ एक नौजवान की मौत को लेकर इतना चिंतित क्यों हूं? दरअसल इस एक हत्या की कल्पना, मैं स्वयं पर घटित होते महसूस करता रहा था और सोचता रहा कि क्या यह संभव नहीं कि ऐसा मेरे साथ भी . . .

मेरी पत्नी, बच्चों को तैयार कर रही थी। उसने मुझे तैयार होने को नहीं कहा किन्तु मैं जानता था कि जब बच्चे और वह तैयार हो जाएंगे तब मुझे भी तैयार होने को कहेगी। इसी बीच वह बोल पड़ी—आप जल्दी तैयार हो जाइए, नौ बजने जा रहे हैं और हमें दस बजे वहां पहुंचना है। तभी कालबैल की आवाज आयी।

दरवाजा खोला तो अविनाश खड़ा था। मैंने उसे बिठाया। हाल-चाल पूछा। वह देखते ही समझ गया कि हम कहीं बाहर जाने की तैयारी में हैं। बोला—'सर, आप कहीं जाने की तैयारी में हैं। मैं फिर आ जाऊंगा।' मैंने नहीं-नहीं कहा और उसे बिठाए रखा। उसका इतनी शीघ्रता से चले जाना मुझे उसके प्रति अनादर करना ही लगा। मैंने उसे कुछ देर ठहरने को कहा ताकि उसे उसका आना व्यर्थ न लगे। मैंने पूछा—पढ़ाई कैसी चल रही है तुम्हारी? परीक्षा की तैयारी कैसी है? वह बोलता गया—'मैं कुछ सलाह लेने आया था सर। क्या

बताऊं, आपके घर तक बड़ी मुश्किल से आ पाया हूं। आज र्क्फयू में थोड़ी ढील दी गई है। किन्तु पुलिस वाले हर मोड़ पर सशस्त्र तैनात हैं। मुझसे हर चौराहे पर उन्होंने टोका टोकी की परन्तु विद्यार्थी जानकर जाने दिया। इसीबीच पत्नी ने एक बार फिर मुझे याद दिलाया कि हमारे निकलने का समय बीतता जा रहा है। अभी आया, कहकर मैं, अविनाश को जरूरी प्रश्नों के लिए संकेत देने लगा। जब उसका काम हो गया तो वह चलने को तत्पर हुआ।

पत्नी मुंह लटकाए बैठी थी। जाहिर था कि ऐन मौके पर जब वह बाहर जाने के मूड में थी अविनाश का आना उसे अच्छा नहीं लगा। जबकि मेरे लिए कोई फर्क पड़ने वाली बात नहीं थी। मैं अपने दोस्तों को अधिक महत्व देता हूं। रिश्तेदार मेरी नज़र में किसी संज्ञा विशेष से अधिक कुछ नहीं होते किन्तु पत्नी की बात को टालना आसान नहीं था, क्योंकि पिछले कई रविवार खाली-खाली निकल गये थे और वह कहती रहती थी कि छुट्टियों में भी उसे चैन नहीं मिलता, बल्कि रविवार को काम ज्यादा ही करना होता है। आने-जाने वालों का तांता हमेशा ही लगा रहता है। उसकी बात अपनी जगह बिल्कुल ठीक थी। आज का दिन इस काम के लिए मुकम्मल था कि हम जरूर कहीं घूमने फिरने जाएंगे। अब हम तैयार हैं और जाने की तैयारी कर रहे हैं। मैं एक बार पत्नी की तरफ पलटता हूं। वह खुश दिखाई पड़ती है।

कालबेल!

पत्नी धम्म से सोफे पर बैठ गयी। मैंने अपने बच्चों से कहा कि दरवाजा खोलें शायद कोई आया है। मेरे बच्चे ने दरवाजा खोला तो देखा पचौरी खड़ा है। वह दोनों हाथ जोड़े अंदर आ गया। मैंने कहा कि वह शीघ्र बताएं कि क्या काम है, क्योंकि अभी हमें बाहर जाना है। किन्तु वह आराम से सोफे पर बैठ गया और अपनी ही समस्याएं सुनाने लगा। भीतर से मुझे बड़ा क्रोध आ रहा था। पत्नी के चेहरे पर मिली-जुली प्रतिक्रिया थी। घड़ी ने पूरे ग्यारह बजाए थे, इसलिए जाहिर था कि अब कहीं जाने का कोई सवाल नहीं। मैं मौन रहकर पचौरी की बातें सुनता रहा लेकिन मेरा ध्यान पत्नी के बदलते मूड पर था। एक तरह से मैं किसी अपराध-भावना से ग्रस्त था। आखिरकार मैंने उससे कह ही दिया . . . "दरअसल हम अभी कहीं बाहर जा रहे हैं, क्यों न तुम फिर कभी आ जाओ।' वह बोला—'पहले कुछ खिलाओ-पिलाओ, फिर जाऊंगा।'

पत्नी किचन में घुस गयी। वह निश्चित रूप से गुस्से में होगी। लेकिन अब उसके ऊपर मुझे दया आ रही थी। मुझे लग रहा था मानो वह भिन-भिना कर कह रही हो—'जाने कैसे-कैसे लोग चले आते हैं। आना ही था तो पहले बता दिया होता। इन्हें तो जैसे हमारी तनिक भी परवाह नहीं—'लेकिन नहीं, वह ऐसा कुछ नहीं कह रही थी। उसने किचन से आवाज लगायी थी—'चाय तैयार हो गयी है। 'मैं भीतर गया और दो कप चाय लेकर हाजिर हो गया। पचौरी महाशय चाय पीते हुए अपनी जीभ चटकार रहे थे। उन्होंने चाय के साथ खाने के लिए कुछ नहीं मंगाया, मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। चाय के बाद कुछ आई-गई बातें होती रहीं, फिर पचौरी चला गया।

अब? क्या होगा?

मैं पत्नी की तरफ सवाल फेंकता हूं। वह गुस्से में जल-तप रही है। मेरे दोनों बच्चे छत

पर पतंग उड़ा रहे हैं। आज बाहर निकलने का वैसे भी मूड था, क्योंकि चार दिनों के बाद कर्फ्यू में ढील दी गई थी और घर में बैठे-बैठे ऐसा लगता था मानो किसी जेल में पड़े हैं। मैंने बंद कमरे में चार दिन किस यातना और उलझन में गुजारे थे उसका वर्णन करना मुश्किल है।

दिसम्बर की शाम गहराने लगी है। मैं अपने मकान की छत पर खड़ा-खड़ा शहर के चौराहे पर आते-जाते ट्रैफिक को देख रहा हूं। एक अजीब-सी भागम-भाग मची है सड़क पर। लोग जल्दी-जल्दी अपने घर लौट रहे हैं। शाम सात बजे से फिर कर्फ्यू लागू हो जायेगा और लोग अपने-अपने घरों में घुस जाएंगे जाने क्यों, मुझे अब उस नौजवान की चिंता नहीं सताती जिसने अखबारों में अपनी आत्मसुरक्षा के लिए अनुनय की थी। मुझे उसकी मौत की संभावना साफ-साफ नजर आने लगी है, कि ऐसा हो सकता है। मैं अपने गणित को पक्का करते हुए यह भी मानने पर मजबूर हो जाता हूं कि पिछले चार दिनों के दौरान जितने लोगों की जाने गयी हैं उन्हीं लोगों में वह नौजवान भी शामिल है। . . . मुझे ऐसा मानना पड़ा क्योंकि मैं अखबार में छपी खबरों को सिर्फ पढ़ सकता हूं और उस पर सोच सकता हूं।

'चलो किसी रेस्तरां में बैठकर काफी पी आएं। इससे थोड़ी ताज़गी मिलेगी, मैं पत्नी की तरफ एक प्रेमभरा आग्रह प्रकट करता हूं।'

वह कुछ नहीं बोलती।

'क्या सोच रही हो?'

'कुछ नहीं, सोचती हूं कि यह रविवार भी बेमतलब खाली चला गया। हम दिन में जहां जाना चाहते थे, जा सकते थे। तुमने वैसा नहीं किया। अब कर्फ्यू में टंगी इस मनहूस शाम में किधर जाएं'

'फिर भी . . .'

हम बाहर निकलते हैं। शहर वैसा ही है जैसा रोज लगता है। लोग अपनी जरूरतों के ढेर सारे सामान लेकर दुकानों में आ-जा रहे हैं—क्या पता कर्फ्यू की अवधि बढ़ ही जाए? हम एक रेस्तरां में काफी के ख्याल से पहुंचते हैं कि इसी बीच रेडियो पर घोषणा होती है कि अब फिर से अगले चौबीस घण्टों के लिए शहर में कर्फ्यू जारी हो गया है. . . . ।



रोशनी

❑ जसविंदर शर्मा

"जिस गांव की रोशनी ऐसी होगी, वहां का अंधेरा कैसा होगा।" जब भी मैं रोशनी को देखता हूं तो मुझे अपने दोस्त कपूर की याद आ जाती है। रोशनी की काली कलूटी शक्ल देखकर ही उसनें कहा था जब वह एक बार मेरी शादी में मेरे गांव आया था। तब से जब भी कपूर से मिलना होता था वह पहले रोशनी के बारे में पूछता है। अभी कुछ दिन पहले बम्बई से कपूर की चिट्ठी आई थी. लिखा था 'रोशनी की शादी हुई कि नहीं' इतना बड़ा आदमी और गांव की सीधी-सादी रोशनी के बारे में वह क्यों इतना चिंतित रहता है, मैं कई बार समझ नहीं पाता। उस साधारण काली शक्ल वाली रोशनी में कपूर ने ऐसा क्या देखा कि उसे उस बारे में यों पूछते रहने पर विवश होना पड़ता है।

रोशनी से मिलने के बाद से ही मेरे और कपूर कें बीच रोशनी के जीवन के घटनाक्रम को लेकर संवाद चल रहाहै। मैं तो कभी-कभार गांव जाता हूँ। वहां ताऊ जी हैं। हां, जब कपूर की चिट्ठी आती है तो गांव की तरफ मेरे कदम अपने आप उठ जाते हैं। उसी रोशनी की आगे की कहानी जो लिखनी होती है मुझे।

रोशनी की शादी से पहले उसके बारे में कुछ ऐसा नहीं है जो असाधारण कहा जा सके। गांव में उसकी पुश्तैनी भट्ठी है, जब हम बचपन में रोजाना चना, मकई, बाजरा के दाने भुनाने जाया करते थे, रोशनी तब छोटी सी थी। बहती हुई नाक. कमजोर, नंगे पांव वाली। वह भट्ठी की आग में सूखे घासफूस के तिनके डालती रहती थी। उसकी मां बिसनी काफी गुस्सैल तथा खपी हुई सी रहती। बरसात के दिनों में जब वह भट्टी न जलाती तो हमें बड़ा गुस्सा आता था। हम अपने अपने अनाजों की पोटली लिए हुए बिसनी के घर के बाहर पीपल के नीचे बैठे इंतजार करते रहे कि कब बिसनी भट्टी चालू करे और हम दाने भुनवा कर खायें, गांव में कोई फेरीवाला तो होता नहीं था उन दिनों।

बिसनी बारी का पूरा ध्यान रखती थी। कई बार स्कूल से आने के बाद ही एकदम मैं अपने छोटे भाई विक्की को भेज देता था ताकि वह सबसे पहले जाकर अपनी बारी पर बैठ जाये। शाम को रश हो जाता था। सारे गांव के दाने भुनवाने की एक ही भट्ठी जो ठहरी। धक्का-मुक्की भी बहुत चलती थी, मगर बिसनी की गरम-गरम दरांती से सभी डरते थे।

रोशनी थोड़ी बड़ी हुई तो वह भट्ठी पर बैठने लगी थी। अब तक और लोगों के साथ मिलकर शादी-ब्याह वालों के घर में बर्तन मांजती थी, अब बिसनी के साथ मिलकर दोनों जनी स्वतंत्र रूप से शादी-ब्याह का काम संभालने लगीं थीं।

मेरी शादी के दौरान भी ब्याह का काम बिसनी को ही दिया गया था, उन्हीं दिनों उसके मर्द को निमोनिया हो गया था। बिसनी और रोशनी को ही सारी जिम्मेवारी निभानी पड़ी। कुएं से पानी भरकर लाना, घर में इतने सारे मेहमान जो थे। उनके बर्तन कपड़े बहुत

सारे हो जाते थे, पूरा दिन मां-बेटी लगी रहती थीं।

बारात से दो दिन पहले ही कपूर आ गया था। रोशनी को देखकर पता नहीं उसे क्या सूझी, पास बुलाकर उसका नाम पूछ बैठा, रोशनी ने लजाते हुए कहा, 'रोशनी', वह बोला, 'रोशनी, क्या सुन्दर नाम है। जिस गांव की रोशनी ऐसी होगी उस गांव का अंधेरा कैसा होगा' 'हंसमुख तो था ही, खैर एक-दो बार जिक्र किया उसने' गुरु, लड़की खूब है। मैंने धमकाने वाले स्वर में कहा, 'बेवकूफ ये गांव है, दिल्ली नहीं, जहां सब चलता है, यहां रोशनी से बात भी करेगा न, तो ताऊ जी तेरे कान खींच लेंगे।

फिर भी कपूर ने डोली वाली रात तक रोशनी पर अपना जादू कर ही दिया था। वह भी कनखियों से मुस-मुस करती हुई उसे देखती ही रहती। अपनी शादी होने के कारण मैं कपूर पर क्या नज़र रखता। मगर उन दोनों के बीच कुछ हुआ या नहीं हुआ, मालूम नहीं पर जाते समय कपूर खुश था, कह रहा था, 'रोशनी के बारे में लिखते रहना, कहीं उसे अंधेरा न निगल जाये।'

खैर मैं अपनी पत्नी के साथ दिल्ली आ गया। कपूर सपरिवार बम्बई चला गया प्रोमोशन लेकर। मेरे मां-बाप तो बचपन में ही गुजर गये थे। हां, ताऊ जी कभी-कभी आ जाते। उनकी चिट्ठी आती रहती। और अब वृद्धावस्था होने के कारण कम ही लिखते थे। उनके बच्चे भी बड़े हो गये थे. अपनी-अपनी जिम्मेवारियां संभाल ली थीं उन्होंने। मैं भी छह महीने या साल बाद ही गांव जा पाता था।

इस दौरान रोशनी के बारे में लोग बताते रहते, मिलती तो कभी-कभार ही थी वो। आसपास के गांवों में शादी-ब्याह निपटाने जाती थी। एक बार ताऊ जी से पूछ बैठा, रोशनी की शादी नहीं हुई क्या अभी ? ताऊ जी आवेश में आकर बोले, हुई थी। मैं चकित रह गया उस खपी हुई, काली कलूटी रोशनी की शादी भी हो गयी, कब ? किसके साथ ? पता चला कि मेरी शादी के दो-चार महीने बाद ही मंगरू नाम के गडरियों के लड़के के साथ हुई थी उसकी शादी। मगर अब अलग अलग रहते हैं। रोशनी की शादी के छह महीने बाद ही बच्चा पैदा हुआ था, वो भी मरा हुआ। कुलटा थी वो. . . ।

इससे आगे और मैं सुन न सका। मेरी आंखों के सामने वो दृश्य घूम गया, जब कपूर उसके साथ अठखेलियां करता था, मेरी शादी के दिनों में। उसी ने रोशनी की जिन्दगी बरबाद की है। बेचारी सीधी-सादी लड़की को कहीं का नहीं छोड़ा उसने। पहले ही उसके जीवन में संघर्ष ही संघर्ष था और अब तो वह आवे में आ गिरी थी।

शहर आकर मैंने कपूर को गुस्से से भरा खत लिखा। उसको जीभर कर गालियां दीं तथा कहा कि अगर वह सात जन्म भी प्रायश्चित करे तब भी इस पाप से मुक्ति नहीं पा सकता। कोई दो महीने तक कपूर का कोई उत्तर नहीं आया।

मैंने सोचा कि वह अब शर्मिंदा होगा. . . अब क्या मुंह दिखायेगा मुझे। हर खत में रोशनी. . . रोशनी . . . लिखता रहता है। अब तो शायद कभी भी उत्तर न दे. . . . चलो अच्छा है, ऐसे दोस्त से दुश्मन भला। उसने तो मेरे गांव की भोली-भाली लड़की के जीवन से खिलवाड़ किया है।

छह महीने बाद कपूर का पत्र आया। उसने लिखा था, "मैं कलकत्ता गया हुआ था वापस लौटा तो तुम्हारा खत मिला, बेहद अफसोस हुआ, रोशनी के बारे में जानकर। और तुम्हें क्या हो गया है मेरे बारे में उल्टा-सीधा सोच लिया। तुमसे मैंने उसके शरीर की तारीफ भर की थी कि कितना गठा हुआ शरीर है उसका। गांव में मेहनत करने वालों के शरीर वैसे भी सुगठित होते हैं। मैं तो उसकी शक्ल और उसके विपरीत नाम से प्रभावित हुआ था, क्योंकि उसकी सूरत तो काली थी, मगर नाम काफी उज्जवल था। बस इससे अधिक कुछ नहीं था। ऐसे सुडौल शरीर वाली गरीब तथा 'नेगलेक्टड' लड़की किसी का भी का 'शिकार' हो सकती है। हां, अब तो मैं उम्र भर उसके बारे में पूछता रहूंगा कि रोशनी का क्या हुआ, उसकी दुबारा शादी हुई या नहीं या पहले वाले उसे रखने को राजी हुए या नहीं। मैं खुद उससे मिलना चाहूंगा। बोलो, गांव कब जाना होगा, मैं दिल्ली तक बाई एयर आ जाऊंगा, एयरपोर्ट पर लेने आ जाना।

पत्र बंद करके मैं सोचने लगा कि गांव जाने के लिए टैक्सी ठीक रहेगी या अपनी कार। रोशनी को ढूंढने में आसानी रहेगी। न जाने किस गांव में किस शाद-ब्याह वालों के घर ढेरों झूठे बर्तनों के सामने बैठी मिलेगी वो।

O

भाषांतर
कश्मीरी कहानी

वहम

❑ अवतार कृष्ण रहबर
अनु० डॉ० ओंकार कौल

घड़ी ने आठ बजाए। नाथा ने रजाई से बाहर सिर निकाला। ओह, दिन काफी चढ़ आया है। आंखें मलते-मलते उसके मुंह से ये शब्द निकले। पता नहीं क्यों? . . . .एकदम उसके चेहरे पर काली छाया सी आ गई। अभी वह कमीज ही पहन रहा था, उसके कान तक लाल पड़ गए। उसके भोले-भाले ठाकुर जैसे चेहरे का रंग बदल गया। उसने पता नहीं ऐसा क्या देखा!

"अफसोस, अफसोस, पता नहीं कौन शत्रु आ धमकेंगे? पता नहीं कौन पहाड़ टूट पड़ेंगे? पहली बात यह कि वह कभी सावधानी नहीं बरतती। जैसे उसके होश ही उड़ गये हों। होंठ भींचते हुए नाथा गुस्से से आग-बबूला हो गया। परमात्मा ही खैर करे। गुस्से में चूर नाथा सीधे रसोई घर की ओर गया। मगर उसकी पत्नी वहां नहीं थी।

"जब भी उसे देखो तो बस पानी के नलके से ही चिपकी हुई मिलती है", कहते हुए वह कहीं उसे पीटने के लिए चला गया। उसकी आंखों में लहू उमड़ आया था। मगर बरामदे में पहुंचते ही वह ठिठक गया। जैसे उसके जख्म हरे हो गए जब उसने अपनी पत्नी के साथ मुहल्ले की और दो-तीन स्त्रियों को पानी भरते और एक-दूसरे के साथ गपशप करते हुए देखा।

ये स्त्रियां कितनी दरबदर हो गई हैं . . . न इन्हें किसी का भय है और न शर्म ही . . . देखो यह गोरी शलगम सरीखी स्त्री क्या कर रही है। यह जैसे उसके पिताजी की जायदाद है। यह रही रहीमा मिस्कीनी। क्या नखरे दिखा रही है। नये कपड़े जो पहने हैं।

अपने आपसे बातें करते हुए, उलाहने देते हुए, नक्ल उतारते तथा सीधा कहते हुए उसे मुहल्ले की स्त्रियों के सामने हिचकिचाहट-सी हुई। वह भीतर मुड़ा। उसके गुस्से में अभी कोई कमी नहीं हुई थी। कभी होंठ भींचता हुआ, कभी जबड़े चबाता हुआ वह रसोई के पास ही इधर-उधर घूमता रहा।

यह बात सच है कि चांदी ने उसे देखा नहीं। यदि चांदी देख लेती तो वह एक नज़र से ही भांप लेती कि कोई-न-कोई बात बिगड़ गई है। कोई-न-कोई चाल चलती जिससे उसका गुस्सा ठण्डा पड़ जाता।

चांदी नाथा की पत्नी थी। वह चांदी जो बिल्कुल खरी थी। चांदी असल में तुलमुल गांव की थी। उसकी सारी उम्र शहर में ही बीत गई थी। मगर गांव का प्रभाव नहीं गया। कहते हैं कि तुलमुल का पानी बहुत ही शीतल है और पवित्र भी। तुलमुल के चश्मे की भांति वह स्वयं भी बहुत ही शीतल थी और दुनिया के रंग समझती थी। चेहरे का रंग देखते ही वह वास्तविक स्थिति भांप लेती थी।

चांदी नाथा की नस-नस से भली भांति परिचित थी। कभी कभार यदि नाथा उसे
चीख-चिल्ला कर उल्टा-सीधा कह देता तो वह बिल्कुल चुप रहती थी। यदि उसके स्थान
पर कोई और स्त्री होती, तो रोज़ वहां तू-तू, मैं-मैं हमेशा जारी रहती। उस घर का
रोटी-पानी व्यर्थ ही धरा रहता। वहां हमेशा लड़ाई-झगड़ा जारी रहता। नाथा के गुस्से को
देखते समय, चांदी को अपने बुद्धिमान पिताजी की वे बातें याद आतीं, जिनसे उन्होंने
बहुत-से घर-परिवारों के लड़ाई-झगड़े समाप्त किये थे। वे कहा करते थे, "दो हाथों के
रगड़ने से गर्मी पैदा हो जाती है। इसी भांति गुस्सा भी ऐसी आग है, जो जिह्वाओं के चलाने
से ही बढ़ती है। अतः गुस्सा नहीं करना चाहिए। अगर कोई गुस्सा करे भी, तो चुप्पी साध
लेनी चाहिए। चुप्प रहना चांदी समान है। चुप्पी ही वह मिठास पैदा करती है जैसे
धीरे-धीरे पकने से सब्जी का स्वाद बढ़ जाता है।

इसीलिए चांदी कभी मुंह नहीं खोलती, वरना यदि पति कुछ कहता, वह भी कह
सकती थी—

"ओ सिंघाड़े जैसी सूरत वाले! जा कहीं सिंघाड़े खा! जा चला जा कहीं . . ."

"अरे रस्सी की गठरी, जा कहीं छांव में पड़ी रह"।

"अरे, रस्सी की गठरी तुम्हारी मां थी, वह तुम्हारी बहिन थी। . . ."

चांदी भी ढोंग रचा लेती। अपने बाल नोंच लेती, अपनी कमीज का गला फाड़ लेती
और छाती पीटती हुई चिल्लाती—

"हाय! मुझे मार डाला—है कहीं कोई!"

लड़ाई अपने आप बढ़ जाती। हाथ भी उठ जाते। कश्मीर छोड़ दो, तहरीक जैसा घर
छोड़ दो"—तहरीक शुरू हो जाती। सारा मुहल्ला जमा हो जाता और बीच-बचाव कर देता।
वे दोनों दूसरों के हंसने और हंसी-मजाक के भी पात्र बन जाते। घर में जैसे तबाही मच
जाती।

असल में चांदी अभी पानी ही भर रही थी। एकदम किसी के गिरने की आवाज़ आई।
क्या हुआ? बेटा पेट के बल चलते-चलते अपने पिता के पास आया। उसने उसे ठोकर
मारकर दूर पटक दिया।

"हाय! बेटा गिर गया होगा।"

चांदी घबड़ाकर दौड़ती हुई भीतर आई और उसे उठा लिया।

अकेलापन अन्धापन है . . . मेरा भी कोई होता। वह इसकी देख-रेख करता, इसको
गोदी में उठाता. . . कौन उठाता है? देखो अभी तक सोया पड़ा है। उसको रजाई कितनी
प्यारी है. . .!

"छी-छी . . छी—इस गुलाम पर और भी कोई हुक्म कर लेती। फिर मैं उस राम खिसू
के पैर ही दबाकर आता।"

नाथा के एकदम चिल्लाने की आवाज से चांदी घबड़ा गई। वह हक्की-बक्की रह गई।
उसकी समझ में नहीं आया कि क्या हो गया। जब भी किसी अन्धेरी कोठरी में कहीं से

रोशनी आ जाती है तो पहले-पहले कुछ भी दिखाई नहीं देता। चांदी अपने पिताजी के बारे में अशुभ शब्द सुनकर गूंगी-सी हो गई।

"कुछ क्यों नहीं कहती? कम-से-कम तुम्हारी उस नसवार लेने वाली मां की नसवार ही ले आता। आखिर मैं तुम्हारे मां-बाप का गुलाम जो ठहरा।

यह सुनकर भी चांदी चुप रही। उसकी समझ में आ गया कि कोई उल्टी-सीधी बात हो गई है।

"कुलज़िम जैसी क्यों ठिठक-सी गई जैसे खाने आ जाएगी। मां से कह देती कि तुम्हें विवाह नहीं करना है . . . उस समय तो लौंग पहन कर बैठ गई . . . सज-धज कर . . . फिर यही लौंग कहां गिर जाती है जब दूसरों को घरों को तबाही पर ले आती हो।"

"आखिर मैंने क्या किया?

"क्या किया? कुछ नहीं किया। तुम कुछ भी नहीं जानती। मैं तुम्हारी बादामी आंखों के रौब में नहीं आऊंगा। तुम मुझे समाप्त करने पर तुली हो।

"आप क्या कह रहे हैं? मेरा क्या . . ?"

"तुम्हारा क्या दोष है? मैंने कहा ना बिल्ली के घी खा लेने के बाद उसकी दुम हिलाना बहुत बुरा लगता है। हाय! कहां से अपनी उस मां को ले आऊं, जो तुझे पकड़कर इस घर से बाहर निकाल देती। फिर तुम दीया ऐसा रख देती . . ."

"तेल का दीया! क्या वह दिखाई दे रहा था?"

"हां, हां"—चिल्लाकर नाथा ने जवाब दे दिया, "वह दिखाई देता था"।

"अब क्या कर लूंगी?" चांदी सोचने लगी। थोड़ी देर सोचकर अपने गुलाबी चेहरे से अपनी जुल्फों की लट को झटककर—बादामी आंखों से उसकी ओर देखते हुए कहने लगी—

"कितने अन्धविश्वासी हो! मैं आपकी बुद्धि देखकर हैरान हो जाती हूं। जिस समय यही दीया अन्धेरे का नाश करता है, प्रकाश ले आता है, एक प्रेम करने वाले परवाने को बचाता है, अरमान निकालता है, उस समय यह प्रज्ज्वलित शमा कहलाता है। और अब . . ।"

"जी हां, आज तुमने बहुत दर्शन सीख लिया है। यह उस गोरी शलगम ने सिखाया होगा। उससे पूछती कि राजमां कैसा बना था"?

नाथा के यह शब्द सुनकर चांदी स्तब्ध रह गई। उसने सोचा था कि ऐसे ही नाथा का गुस्सा ठण्डा हो जाएगा। मगर कहां?

फिर कुछ विचार आया और बोली, "अच्छा यह तो बताओ, जिस मां ने यह शिक्षा दी है, उसने यह भी कहा होगा कि हरेक बुरी बात या बला का बार-बार उल्लेख करने से उसका प्रभाव मिट जाता है . . ।"

"हां!" नाथा के चेहरे का असली रंग थोड़ा-बहुत लौट आया क्योंकि मां ने कभी ऐसा ही कुछ कहा था। नाथा ने पूछा,

"अच्छा, उससे क्या?"

"बस, घर से बाहर निकलकर सबसे कह दो, "मैंने आज बुझे हुए दीये को देखा है। पता नहीं क्या हो जाएगा। पता नहीं, कौन से पहाड़ टूट पड़ेंगे। ऐसा कुछ कहने से इसका बुरा प्रभाव मिट जाएगा . . . "।

"अच्छा?"

नाथा पागल की भांति लम्बा ऊनी फिरन पहनकर चुटिया लटकाए हुए घर से बाहर सड़क पर निकल आया।

चांदी के मन में बहुत गुस्सा था। उसे अपने पति का यह सब कुछ कहना-सुनना बहुत बुरा लगा। मगर करती क्या, जिस बीमारी का कोई इलाज न हो उसका दर्द सहना ही पड़ता है। भाग्य की विडंबना! बेचारी यह मुसीबत में फंस गई थी। अपने पति के दकियानूसी विचारों का क्या करती। उस नीम पागल का क्या करती?

नाथा ने लौटकर अब अच्छी तरह खाना खाया और ऊपर वाले कमरे में कपड़े बदल रहा है। इतने में चांदी का छोटा भाई आया। कुशलता पूछने के पश्चात् उसने बेटे को ढूंढा। बेटे को ठोकर लगने से नील के निशान पड़े थे और वह रो-रोकर सो गया था। चांदी ने उसे सारी कहानी सुना दी।

"आक छी" चांदी को जोर से छींक आई। नाथा शायद सीढ़ियां उतर रहा था . . .।

"यह किसने छींका?"

चांदी का भाई निका स्वभाव से थोड़ा-सा बदलिहाज़-सा था, बोला-

"कोई नहीं, मैंने छींका . . छींक कोई किसी की रिश्तेदार हैं जो लिहाज़ कर ले।"

क्या आप कुशलपूर्वक हैं?

"जी हां, कुशलपूर्वक . . . नाथा ने गुस्से में ही उत्तर दे दिया। उसको बहुत गुस्सा आया। मन-ही-मन वह उसके चेहरे को नोंचकर उसकी नाक तक मिटाना चाहता था मगर मुंह से कुछ नहीं बोला। क्योंकि निका के भाई-बहिन पिता के स्वर्गवास होने के पश्चात् उसका विशेष ध्यान रखते थे। उसे अत्यधिक प्यार करते थे।

खैर, नाथा रोनी सूरत बनाकर चिलपाना कोचे से निकलकर जांखना कोचे के रास्ते अपने कार्यालय की ओर निकला। खानकाह के द्वार पर पहुंचकर वह रुका। सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर मुंह से कुछ प्रार्थना के शब्द बोले। फिर आगे की ओर सीधे चला गया। फतेह-कदल और हब्बाकदल होते हुए टैंकीपोरा के रास्ते से अपने दफ्तर की ओर चला। वह रेशमखाने के दफ्तर में काम करता था।

नाथा लगभग दस मिनट देरी से दफ्तर पहुंचा, सीधे अपने कमरे में चला गया और कोरे कागज पर कलम चलाने लगा। मन-ही-मन उसे छींक की बात दिल को कुरेद रही थी। उसका पूरा ध्यान उसी छींक की ओर था कि ज़रूर कहीं आज अनिष्ट होकर ही रहेगा। गुलाम नबी वहीं बैठा था, उसने कहा—

"क्यों भई नाथ जी, आज आप मायूस-से क्यों हैं? लड़ाई करके आए हैं?"

"जी नहीं", नाथा ने गुलाम नबी की ओर तिरछी आंख से देखा और फिर कागजों में लग गया। गुलाम नबी ने दुबारा कहा,

"जी नहीं, कोई बात अवश्य है?"

"हां! क्या कहूं! सुबह आंख खुलते ही मैंने बुझे दीये के दर्शन किए। घर से निकलने ही वाला था कि एक "जानमर्ग" ने छींक दिया। सोचता हूं, पता नहीं कौन-सी विपत्ति आ जाएगी!"

"हा-हा-हा!" अपने लट्ठे के पाजामे को झाड़ते हुए वह दूसरे क्लर्क से कहने लगा—

"मक्खन लाल, सुन लिया? नाथ जी ने सुबह-सुबह बुझे दीये के दर्शन किए हैं और किसी ने छींका भी है। कहते हैं पता नहीं कौन-सा तूफान आने वाला है।

"हां . . . आ तो गया कुछ देर पहले . . ।" मक्खनलाल कुछ कहने लगा, गुलामनबी ने उसे जबान से इशारा किया और वह चुप रहा।

गुलाम नबी दुबारा नाथा को कहने लगा—

"नाथ जी, इतने अंध विश्वासी मत बना करो। पुराना फलसफा अब बिल्कुल पुराना पड़ गया है। कोई सामने पड़ गया तो किसी ने टांग को डसा, फ्लां ने नज़र लगा दी, ..."

"हा-हा-हा" कोने में से जोर से हंसने की आवाज़ आई। यह वरिष्ठ मुंशी था। शायद वह इनके प्रश्न उत्तर सुन रहा था। उसने अपनी आंखों से ऐनक उतारी और उसके शीशे साफ करते हुए कहने लगा—

"सुनो, हमारी बड़ी मां है—यानी दादी। वह मुझ पर इस बात पर गुस्सा होती है कि मैं क्यों नहा-धोकर साफ कपड़े पहनकर घर से निकलता हूँ। क्योंकि उस समय पड़ोसन फाता अपने घर की खिड़की पर बैठी होती है और उसकी आंखें फूट जाने के योग्य हैं यानि कि उसकी नज़र बहुत बुरी है . . . एक बार मैंने पूछा "दादी जी, वह कैसे?"

"गुला ड्राइवर को क्या हुआ? इतना हट्टा-कट्टा आदमी मर गया होगा!"

मुझे इस बात पर गुस्सा आया और कहा—

"जा अपना काम कर। न किसी बात का पता होता है और कुछ फिजूल में शक कर लेती हो। बस यही कि उसने नज़र लगा दी और इसने यह कुछ किया। . ."

"हा-हा-हा"- सबको जोर से हंसी आई। गुलाम रसूल ने अपनी बात जारी रखी। मैंने कहा कि वह शराब से मर गया। दो-दो तीन-तीन बोतल शराब पीता था। मरता नहीं तो और क्या?

"—उसको इन बातों पर कोई विश्वास ही नहीं आता। बस मुर्गे की एक ही टांग! यही नाथजी की हालत है। वह दादी तो अनपढ़ है मगर नाथा . . । मैं हैरान हूं कि इसको हुआ क्या है?"

मक्खन लाल से यह सब बर्दाश्त न हुआ और वह बीच में ही बोल पड़ा, "ये भली-भांति

अपना भला-बुरा समझते हैं। ये खाते सब कुछ हैं मगर नखरे दिखाकर . . .।”
"जी हां, ऐसे तो बर्बाद हो जाएगा”। गुलामनबी बीच में ही बोल उठा, “हुआ न थोड़ी
देर पहले . . .”

“क्या हुआ?” नाथा ने बड़ी अधीरता से पूछा।

गुलाम नबी ने एक कागज निकालकर दिखाया—लो . . . देखो।” इन दोनों को
तरक्की मिल गयी है।

नाथा हैरान रह गया। उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

दफ्तर का समय बीत गया। घड़ी ने चार बजाए। क्लर्क एकदम दफ्तर से निकल भागे। नाथा गुलाम नबी के साथ ही निकला। गुलाम नबी नाथा को यही उपदेश देता रहा। नाथा घर पहुंचा। रात बीत गई। दिन चढ़ आया। नाथा फिर दफ्तर की ओर चला। आज तो वह बहुत प्रसन्न था। वह फूले नहीं समाता था क्योंकि आज उसकी दाईं आंख फड़क रही थी।

चार बज गए। क्लर्क दफ्तर से एक साथ ही निकले। नाथा भी निकला। आज भी वह गुलाम नबी के साथ ही निकला। इसलिए नहीं कि उनके घर का रास्ता एक था या वे दोनों गांखन में ही रहते थे। उस अंधविश्वासी पर इतना कहने समझने से भी कोई असर नहीं पड़ा था। उसने सोचा कि कल गुलाम नबी उसके साथ था। उसका साथ शुभ था। इसीलिए छींक का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आज अगर उसके साथ ही निकल जाऊंगा तो अवश्य लाभ रहेगा। एक तो दाईं आंख फड़क रही है और फिर उसका साथ शुभ होगा।

नाथा और गुलामनबी चलते-चलते महाराज बाजार पहुंचे। गुलाम नबी एक दुकान पर गया और बच्चों के कुछ खिलौने खरीदे। उसने कहा—हमारा बच्चा बिना किसी खिलौने के घर में घुसने नहीं देता।

नाथा को भी अपना बेटा बेटा याद आया। उसने सोचा क्यों न मैं भी कुछ खिलौने खरीद लूं जिससे शायद मां का पुत्र इस लालच में मेरे पास आ जाए। कल की ठोकर खाने के बाद जैसे मैं उसके लिए मर गया हूँ। वह मेरे पास बिल्कुल नहीं आता. . . हां-हां मुझे कुछ खरीदना चाहिए . .।” उसने एक अट्ठनी जेब से निकाली और एक झुनझुना और एक रबर की गुड़िया खरीदी।

दोनों आगे चलते रहे, इधर-उधर की गपशप करते हुए। गुलाम नबी ने अकस्मात् पूछा, “क्या हुआ तुम्हें, यह अपना जूता ठीक क्यों नहीं कराते हो? इसकी सारी एड़ी तो गल गई है। अगर कहीं गिर गए तो कहोगे कि किसी ने नज़र लगा दी . . .”।

“हां! तुम चिन्ता मत करो। कल ही इसे ठीक कराऊंगा। आज तो देवताओं की कृपा है मुझ पर। आज शैतान भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। आज मेरी दाईं आँख फड़क रही है।

क्या कह रहे हो? लगता है तुम्हें समझाते-समझाते हम पागल हो जायेंगे।” गुलाम नबी हैरान था कि यह अंधविश्वासी अभी भी वैसा ही बना हुआ है। उसे कहता क्या? इसको समझाना पहाड़ पर धान के बीज बोना है।

वे दोनों हरिसिंह हाई स्ट्रीट से शेरगढ़ी की ओर आ रहे थे। चलते-चलते नाथा के जूते की एड़ी निकल गई और वह गिर गया। उधर से कोई गाड़ी आई और उसके साथ टकरा गई।

उसका खून सड़क पर बिखर गया। गुलाम नबी का चेहरा पीला पड़ गया। उसकी आंखों में आंसू भर आए। रबर की गुड़िया एक तरफ गिर गई और झुनझुना दूसरी तरफ जा गिरा। गुलाम नबी की आखें भर आईं। वह बहुत ही दुखी हुआ मगर मन-ही-मन थोड़ा-सा मुस्कराया भी!

"हा . . . हा . . . मेरा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। नाथा . . . तुम ने वाकई एक मिसाल कायम की! एक बहुत बड़ी मिसाल! . . . बार-बार दोहराने वाली मिसाल कि उसकी दाईं आंख फड़क रही थी। आखिर तुम्हारे थोथे वहम ही तुम्हें ले डूबे न!

O

तेलगु कहानी

फूली नागफनी

❑ श्रीपाद सुब्रह्मण्यम शास्त्री

अनु० डॉ० विजयराघव रेड्डी

“अरे बेटा! इस बड़ी बूढ़ी से और कुछ मत कहलवाओ । उसे थोड़ा समझाओ। जितने भी बड़े क्यों न हों, उन्हें भी लोक रीति के अनुसार चलना है।”

“अब क्या हुआ मां?”

“मुझसे क्या पूछते हो? दुनिया ने रट लगा रखी है।”

“दुनियावाले जो कहते हैं, वे सब सही थोड़े होता है।”

“तो मैं ही कह देती हूं। सच कहने में मैं क्यों पीछे रहूं? लेकिन क्या-क्या कहूं और कितना कहूं?”

“अगर कुछ है तो सब कुछ कह डालना अच्छा है।”

“तुम्हारा मतलब क्या है?

“मुझे क्या पता? मैंने सुना हो, तब न?”

“तो तुमने कुछ देखा नहीं और कुछ सुना नहीं। फिर कह क्या रहे हो?”

“मां, तुम्हें पता है न, मुझे सवेरे दस बजे से पहले दफ्तर पहुंचना होता है।”

“बहू खानदान की इज्जत मिट्टी में मिला रही है उसे तुम्हें संभालना नहीं? खानदान की इज्जत से बढ़कर है क्या तुम्हारा दफ्तर?”

“खानदान की इज्जत को बनाए रखने की जिम्मेवारी तुम पर भी है न, चलो अगर कुछ घट रहा है तो उसके बारे में समय पर मुझसे कहने और मुझे बतलाने का कर्त्तव्य तुम्हारा नहीं है क्या?”

“तुम इस तरह उसे सिर पर चढ़ाओगे, तो वह मेरी परवाह क्यों करेगी?”

“मैं कह रहा हूं जो बात है सो कह डालो। लेकिन असली बात कहे बगैर, तुम न जाने कौन-सी राम कहानी शुरू कर देती हो?”

“अच्छा बेटे, मेरी बातें तुम्हें राम कहानी लगती हैं? बहुत अच्छा।”

“राम कहानी नहीं तो फिर क्या? जो अकरणीय कार्य घटित हुआ हो, वह बताती क्यों नहीं?”

“क्या क्या बताऊं? एक या दो हो तो कोई कुछ बताए।”

“अगर तुम्हें खानदान की इज्जत का ख्याल हो, तो एक ही पर्याप्त है।......”

“हूं। तुम्हारी क्या गलती? जमाना ही ऐसा है। मैं तो ठहरी पुरान-पंथी। जितना भी प्रयास मैं करूं उससे कुछ होता है क्या?”

“जो हुआ सो बताना नहीं चाहती और चुप भी नहीं रह सकती।”

"जो देखा और जो सुना, ये मेरी कपोल कल्पित बातें थोड़े ही हैं। कल-परसों मुझे राख ही बन जाना है . . . . इससे मुझे क्या लेना देना? लेकिन इन आंखों से देखते हुए चुप भी कैसे रह सकती हूं। इसलिए यह कशमकश। आखिर तो मां हूं न। मेरी यह यातना, जो मां है, वही जान सकती है। दूसरे क्या जाने? तुम तो मुझे दो कौड़ी की भी नहीं समझ रहे हो। फिर भी तुम्हारी बदनामी को सुनकर मैं अनदेखी नहीं रह सकती।

मैं 'पीसपाटि' के खानदान से पैदा हुई, 'कल्लूरि' वालों के खानदान में ब्याही। दोनों खानदान इज्जतदार हैं। इसीलिए तो परेशानी होती है। नीच खानदान की होती, तो मुझे यह झंझट नहीं होती।"

"इज़्ज़त जहां बनी रहेगी, वहीं बनी रहेगी। जिसे सुरक्षित रखना है, वह सुरक्षित रखेगा। जिन्हें इज्जत से कोई वास्ता नहीं है, और जो इज्जत क्या है जानता नहीं, वह कैसे उसे सुरक्षित रखेगा?"

"बात तो सही है, लेकिन रिश्ता जो जुड़ा है। जिंदगी भर तो एक ही घर में साथ-साथ रहना है न? अन्यथा दूसरों से मुझे लेना देना क्या?" ". . . ."

"मेरे घर की मुसीबत ने ही घेर लिया, इसीलिए तो मैं रो रही हूं . . . ."

"खाते पीते परिवार में रहते हुए ऐसा कहना क्या आपको शोभा देता है मां?"

"ना कहूं तो क्या करूं? क्या मैं म्लेच्छों का खाना खाती रहूं?"

". . . . . . ."

"समझ में नहीं आता कि यह तुम्हारी गृहस्थी है या वेश्यालय?"

". . . . . . ."

"धामी अगर दमदार नहीं, तो औरत बीच बाज़ार में हया छोड़ बैठ जाती है। इसमें अचरज करने की क्या बात है?"

"अम्मा, पांव तले आग जला कर लपटें फैला रही हो।"

". . . . . ."

"अब आगे ऐसा कोई प्रसंग लाऊं तो जूते मारना।"

". . . . . ."

"ज़माने को क्या कहें, बीवी के घर आने पर अब बूढ़ी मां की क्या बिसात?"

". . . . . ."

"अच्छाई क्या है, बुराई क्या है और यश क्या है, अपयश क्या है, इसे समझने और अपनी भूलों को सुधारने के लिए क्या कोई किसी से कहने थोड़े ही आता है? पुरुष हो कर पैदा होने से और पढ़ लिख लेने मात्र से सब कुछ थोड़े ही हो जाता है?"

". . . . ."

"आयु बढ़ने से क्या होता है, जब लज्जा-शर्म ही नहीं है। किससे क्या कहूं, जब ईश्वर ने ही मेरा गला घोंट दिया। पति की जगह मुझे ही उठा लिया होता तो ये मुसीबतें मेरी नहीं होती।"

"अब कुछ कहो गी भी!"

"हां बेटे! अब तो तुम बड़े हो गए हो ना। अब तुम्हारे सामने मैं मुंह खोलकर ..... हाय राम, मेरी यह हिम्मत?"

". . . . ."

"काश! उस 'बेंकुसोदम्मा' के साथ मैं भी काशी यात्रा पर गयी होती।"

". . . . ."

"मेरी भी क्या जिंदगी? मुझ जैसी को काशी यात्रा कैसे प्राप्त होगी? अभी क्या हुआ? न जाने आगे और क्या-क्या अनर्थ देखना पड़ेगा। क्या-क्या सुनना होगा, कितने जूते खाने होंगे?"

". . . . ."

"हां अब इस गृहस्ती के बुरे दिन आ गए। अब इसके अच्छे दिन नहीं लौटेंगे।"

"क्या अब मैं दफ्तर जा सकता हूं?"

"हां जा सकते हो, बेटा। बेशक जा सकते हो। आंखें मूंदने से सब कुछ ठीक हो जाता है। कहते हैं न, हठी व्यक्ति राजा से भी बलवान होता है।"

"हूं . . ."

"अच्छा इसे ही मर्दानगी कहते हैं। ठीक है, जैसा मर्द वैसी औरत। बस खाने पीने से थोड़े ही हो जाता है? पशु भी भूसा खाता है और पानी पीता है, पुरखे ज़मीन-जायदाद दे गए तो उसके बलबूते खाते-पीते रहना भी कोई रहना होता है?"

तभी पल्लू से आंखें पोंछती पत्नी आ गयी।

"अरे, क्या हुआ? रो क्यों रही हो,"

". . . . ."

"इस तरह फूटफूटकर क्यों रो रही हो? क्या हुआ बताओ न?"

". . . . ."

"मुझसे नहीं कहोगी तो मैं कैसे जानूंगा?"

"किस मुंह से बता दूं।"

"अगर मैं घर रहता तो तुम्हारे बिना बताए भी, जान सकता था। हां, जितनी भी दुखद घटना हो, थोड़ा बहुत हमें संभलना भी चाहिए न? इस तरह ज़ोर ज़ोर से रोने से क्या फ़ायदा?"

"हाथ हटाइए। मैं अछूत हूं, वेश्या हूं।"

"जब मन मुटाव हो जाए तो कहने वाले कुछ भी कह डालते हैं। तो उसे लेकर . . ."

"बताइए न, मैंने कुछ कहा उनसे?"

"ठीक है, तुमने कुछ कहा नहीं।"

"क्या आप हम दोनों को समझा-बुझाकर इस समस्या का समाधान कर सकते हैं?"

". . . . ."

"यह बताइए पहले, जिसने लड़ाई छेड़ी है, उस बूढ़ी सियारन को आप जूते मार सकते हैं?"

. . . . . .

"आप ही बताइए कि कभी मैंने इससे पहले कोई टंटा-फसाद खड़ा किया? अब मैं बरदाशत नहीं कर सकती। अगर आप मुझे जिन्दा देखना चाहते हैं तो मेरे लिए कोई अलग बंदोबस्त करा दीजिए।"

". . . . बस एक ही रास्ता है।"

"हां, गोदावरी है न। बस आप यही तो कहेंगे।"

"आखिर हुआ क्या है?"

"ऐसे बोल रहे हैं, मानो कुछ भी सुना नहीं। सच बताइए कि आपको कुछ भी पता नहीं?"

"तुम कहना क्या चाहती हो? क्या मैंने तुम्हारी तकलीफ़ों का ख्याल नहीं रखा?"

"क्या आप वास्तव में मेरी तकलीफ़ें सुनना चाहते हैं?"

". . . . ."

"हे भगवान, मेरी किस्मत में ऐसा ही निकृष्ट जीवन बदा है क्या?"

"आखिर दोनों में झगड़ा क्यों हुआ?"

"मेरा हाथ छोड़िए। क्यों क्या होता है? मेरा जिन्दा रहना ही उसे नहीं सुहाता बस!"

". . . . . ."

"हाय मेरी बदकिस्मती।"

"बस अब मेरा यही हाल रहेगा? दूसरा कोई रास्ता ही नहीं?"

"सब्र करो, मुसीबतें हमेशा घेरे नहीं रहतीं।"

"चुप भी तो रहिए। बहुत सुन चुकी हूं, आपकी दार्शनिक बातें। अभी आपने कहा है न कि घर में आग लगी हो, तो कॉफी गले से कैसे उत्तरेगी? ऊपर से देखनेवालों की स्थिति जब ऐसी हो, तो जो आग में जल रही हो, उसकी स्थिति भला कैसी होगी? . . .

". . . . ."

"मेरे अपने कोई पास में नहीं हैं, इसलिए मुझे इस तरह अनाथ बना दिया।"

". . . . ."

"आखिर मैंने क्या पाप किया? मेरे मायके वालों ने भी कोई कोर-कसर नहीं रखी।"

". . . . . ."

"शादी में मुंह मांगा दहेज़ दिया और जो भी रस्म रिवाज है, उन सबको भरपूर निभाया। पांच दिन धूम-धाम से शादी कराई। सास की हर मांगे पूरी कर दी। आखिर सास ने मुझे दिया क्या?"

". . . . . ."

"शादी के दिन ही, उसके हाव-भाव देखकर गाव के सब लोगों ने समझा कि वह कैसी है।

". . . . . ."

"पता नहीं उसे क्या होता है मुझे देखते ही चिढ़ जाती है। गुस्से से घूर कर देखती है मुझे। क्या मैंने उसे ज़हर पिलाया है?"

"क्या उसकी मेरी जैसी बेटियां नहीं हैं? उनकी बेटियों से मैं किस बात में कम हूं? जो आकांक्षाएं उसकी हैं, उस तरह की आकांक्षाएं क्या मेरी नहीं होतीं? बस ये सब उससे पूछे कौन?"

"इधर मेरी तरफ़ देखो।"

"क्या देखना चाहते हैं? मेरी रोनी सूरत देखना चाहते हैं?"

". . . . ."

"क्यों नहीं पूछते हैं कि उसे इस कदर परेशान करेगी तो जीएगी कैसे?"

"तुम क्या समझती हो? मैंने इससे पहले उससे पूछा नहीं था?"

"ऐसी सीधी-सादी बातों से पूछने से वह थोड़े ही मान जाएगी?"

"आखिर वह मेरी मां जो ठहरी . . . ."

"हां, ठीक है। ब्याही पत्नी की तो जान ले सकते हैं।"

"सच बताओ, यह बात तुम दिल से कह रही हो?"

"खोपड़ी जल रही है तो दिल की बात क्या कहें? मेरे खानदान की पिछली सात पीढ़ियां और आगे की सात पीढ़ियों के लोग गए बीते हैं और अपने तो भले हैं।"

"किसी न किसी तरह से समझौता कर लेना है। नहीं तो कैसे चलेगा?"

"जब मेरी कोई गलती नहीं, और मुझपर कोई आरोप नहीं, तो बार-बार मेरे ऊपर हमला क्यों करती है?"

"ऐसा मत कहो।"

"जब बदन जल रहा हो तो कोई किसी से कैसे लिपट जाएगा? ये सब मैं कब तक बर्दाश्त करूं?"

". . . . . ."

"मेरे घर के लोगों को खरी खोटी सुनाने का अधिकार उसे क्या है।"

"चुप भी तो रहो न।"

"कल मेरा छोटा भाई कलेक्टर हो जाएगा। जो लोग लंदन जाकर लौट आए हैं, क्या वे सब खोटे हैं? अगर मान लो, उसके लोगों में से कोई लंदन गए होते तो उसके पांव क्या ज़मीन पर टिकते होते?"

". . . . . ."

"हमारे लोगों में से कोई रेल में टिकेट कलेक्टर नहीं है, आप जानतेहैं न?"

"आखिर मेरा ख्याल भी नहीं करोगी?"

"आपका ख्याल कर रही हूं, इसीलिए तो इतनी मुसीबतें भुगत रही हूं। उनके बराबर मैं भी गाली गलौज में उतर आती तो मेरी थोड़े ही ये दुर्गति हुई होती?"

चलो जाने भी दो अब, उसने पत्नी को दुलार से मनाते हुए कहा। . . . . बस मुझे तो अपने काबू में कर लेते हैं, वहां तो भीगी बिल्ली बन जाते हैं। रुलाना हो या हंसाना हो, बस

सब कुछ मेरे साथ ही करते हैं। बस वहां कम से कम एक बार डांटकर यह कहते, "तुम्हें इस तरह बर्ताव नहीं करना चाहिए?" तो मेरा दुःख दूर हो जाता।"

"इधर देखो, मेरी तरफ़ देखकर कहो।"

"हां। दस बार कहूंगी। मुझे क्या डर?"

"हां, म ुझे पता है।"

"क्या . . . . .?"

"चुप भी करो, अब रहने भी दो। एक बात मेरी सुनो। बात-बात पर गरम हो जाना, ईंट का जवाब पत्थर से देना, यह कोई बुद्धिमानी नहीं होती।"

"हां, आप तो ऐसी मीठी-मीठी बातें तो करते हैं, कोई हंसे या क्या करे? चलिए अब चलते हैं। हां, हमेशा रात का अंधेरा तो नहीं रहेगा न। दिन की रौशनी भी आएगी कभी।"

"ये हुई न बात।"

"आज जब चूल्हा जलाने लगी, तभी अम्मा बरस पड़ी। मन मेरा खिन्न हुआ। गुस्सा भी आया। पता नहीं, काजू के दाने ठीक तरह से तले कि नहीं, या जल गए। और पकोड़ियां सही सिंक गयीं कि नहीं?"

"अरे तुम्हारे हाथ का पकवान हमेशा अमृततुल्य होता है मुझे। तुम्हारे चेहरे पर मंद मुस्कान दिखती रही तो बस, मुझे किसी चीज़ में कोई कभी दिखाई नहीं देगी।"

"और कोई खुशखबरी सुनाओगी?"

"आपने कहा है न मेरे चेहरे पर मुस्कान दिखाई देती है तो आपको किसी में कोई कमी दिखाई नहीं देती। आप खुश रहेंगे तो मेरा भी जहान बसने लगता है।"

"वाह क्या बात है! लाख रुपये की बात कही तुमने। लाख रुपये क्या हैं? ये तो अनमोल है। मुझे ऐसा लग रहा है कि निबिड़ अंधकार में से नंदन-उद्यान में झट आ पहुँचा हूँ—इधर देखो बस एक नजर . . . . . .।

और जैसे पति के सामने पत्नी एकाएक चांदनी रात में नागफनी सी फूल उठी थी।

○

लघु कथा

रात बीतने तक

❑ रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

किसान की पशुशाला में बंधे पशु रात जागते हुये बिताने को मजबूर थे, क्योंकि छत टपक रहीं थी। वे खड़े-खड़े एक दूसरे का मुंह देख रहे थे।

एक बैल बोला-"अरी बहन गाय, तुम्हें तो किसान अपनी माता कहता है और ऐसी हालत में बांध कर खुद चैन से सो रहा है।"

—"तुम्हें कैसे पता चला कि वह सो रहा है। मैं जानती हूं कि वह जाग रहा है और सोच रहा है कि इस बार फसल बिकने पर सबसे पहले पशुओं के रहने वाला स्थान ठीक करवायेगा। देखों न, मच्छरों से बचने के लिए उसने हमारा लिए धुंआ भी किया है, अपने लिये उसने कुछ भी नहीं किया है।"

—"उसके पास इतना साधन कहां है जो अपने लिये भी धुंआ करे। हमसे कितना काम लेता है? धुंआ करके कौन सा सुख रोप दिया।"

—"तुम उसके त्याग की भावना को नहीं सोच रहे हो, मजबूरियों को देखकर दोष नहीं थोंपना चाहिये। किसान भी तो तुम्हारे साथ रात-दिन मेहनत करके गरीबी में रहता है।"

—"क्या इसलिये विद्वानों ने अपनी मोटी-मोटी किताबों में किसान को अन्न का भगवान लिखा है और लोग आंखें बन्द करके मानते आ रहे हैं।"

—"मुझे गर्व है कि किसान गरीबी, भूखा आदि की चिन्ता किये बगैर अपना कर्म करता रहता है और खुश रहता है।"

—"इतनी मेहनत का फल अनिद्रा, अंधेरा, अभाव और वस्त्रहीनता है, तब कौन कठिन परिश्रम करना चाहेगा।"

—"जब मनुष्यों के भगवान नंगे होकर भी हजारों-लाखों की प्रार्थनाएं सुनते हैं और वरदान देते हैं तो क्या किसान रूपी अन्न का भगवान सबको अनाज भी न दे। जो दूसरों के लिये सोचते हैं वे अपनी परेशानी या दुःख को नहीं विचारते हैं। ऐसे लोग दूसरों को सुखी देखकर ही खुश होते हैं। किसान जानवरों की कितनी सेवा-जतन करता है, उसकी पहुंच और सामर्थ्य देखकर सोचो तथा टिप्पणी करो।"

सभी पशुओं ने राहत की सांस ली, उन्हें रात बीतने का पता ही नहीं न चला।

○

आने वाला कल बीते कल की अपेक्षा अधिक सार्थक होगा

❑ हिमांशु जोशी

(कथाकार हिमांशु जोशी से डॉ० कीर्तिकेसर की बातचीत)

हिमांशु जोशी का जन्म 1935 में कुमाऊं के पर्वतीय अंचल में हुआ और वहीं उनका बचपन बीता। उनकी शिक्षा-दीक्षा नैनीताल और दिल्ली में संपन्न हुई। उनकी अभिरुचि बचपन से ही लिखने में थी। उनकी पहली कहानी 1954 ई० में प्रकाशित हुई। हिमांशु जोशी ने पत्रकारिता और स्वतंत्र लेखन को अपनी आजीविका का आधार बनाया। हिन्दुस्तान टाइम्स की प्रसिद्ध और लोकप्रिय पत्रिका साप्ताहिक हिन्दुस्तान के साथ संबद्ध रहे। 'समय साक्षी है' उनका उपन्यास इसी पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। आजकल आप स्वतंत्र लेखन करते हैं और देश, विदेश की यात्राओं में व्यस्त रहते हैं। उनकी देख-रेख में नार्वे से हिन्दी-अंग्रेजी की पत्रिका 'शांतिदूत' प्रकाशित हो रही है।

अपने लम्बे लेखन काल में इन्होंने कहानियां, उपन्यास, कविताएं, यात्रा वृत्तांत तथा नार्वेजियन् साहित्य से संबंधित लगभग 24 पुस्तकें हिन्दी साहित्य को दी हैं जिनमें से उल्लेखनीय उपन्यास हैं - 'अरण्य', 'महासागर', 'छाया मत छूना मन', 'कगार की आग', 'कोई एक मसीहा', 'समय साक्षी है', 'तुम्हारे लिए' और 'सुराज'। कहानीकार के रूप में हिमांशु जोशी ने अपनी विशिष्ट पहचान - 'अंततः', 'रथचक्र', मनुष्य चिन्ह, जलते हुए डैने, हिमांशु जोशी की 51 कहानियां और उत्तर पूर्व कहानी संग्रहों से बनाई। बाल साहित्य में तीन तारे, बचपन की याद रही कहानियां, सुबह के सूरज, हिम के साथी, विश्व की श्रेष्ठ लोककथाएं, नार्वे, सूरज चमके आधी रात और काला पानी आदि रचनाएं देकर उल्लेखनीय कार्य किया। अग्नि संभव कवि-संग्रह से हिन्दी कविता में भी अपना नाम दर्ज किया। परन्तु उन्हें देश में जो यश प्राप्त हुआ वह कथा-साहित्य (उपन्यास और कहानी) से ही प्राप्त हुआ है। 'कगार की आग' उपन्यास कई विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है।

हिमांशु जोशी के साहित्य रचना के कुछ अपने आधारभूत विश्वास हैं जैसे आप मानते हैं कि बिना कहानीपन के कहानी का कोई अर्थ नहीं रह जाता। कहानी को कहानी होना ही चाहिए। भावुकता के विषय में भी वे मानते हैं बिना भावुकता के मनुष्य-मनुष्य कैसे हो सकता है? भावनाशील व्यक्ति ही कोई क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त करके शब्द की शक्ति को अभिव्यक्त करता है। इस सृष्टि में ऐसा कुछ भी नहींहै जो अर्थपूर्ण न हो, जिसकी अपनी कोई सार्थकता न हो। उन्होंने अपनी रचनाओं में समकालीन जीवन के गहराते हुए संकट को बहुत निकट से देखा है। उन्हें लगता है असत्य अधिक आकर्षक और अधिक प्रासांगिक हो गया है। शायद इसीलिए सत्य के पांव असत्य से पीछे रह जाते हैं। इस सत्य असत्य के यथार्थ से जुड़े प्रश्नों जैसे जो है और जो होना चाहिए के बीच की संधि-रेखा इतनी धुंधली

क्यों है? असत्य जीत कर भी हार क्यों जाता है? के उत्तर खोजने की कोशिश हिमांशु जोशी ने अपनी रचनाओं में की है। अजीत दैनिक उनके उपन्यास 'कगार की आग' को कुछ वर्ष पहले धारावाहिक रूप में प्रकाशित कर चुका है आज हिमांशु जोशी डॉ० कीर्ति केसर के साथ हैं इक्कीसवीं सदी से जुड़े कुछ प्रश्नों के उत्तर लेकर— [सं]

—हिमांशु जी! इक्कीसवीं सदी के साहित्य की भूमिका क्या होगी? आप क्या समझते हैं।

—तीसरी दुनिया की सारी सोच पश्चिम से नियंत्रित होती है। जो पश्चिमी संसार कहता है, वही हमारी हकीकत होती है। सदियों तक दासत्व का अभिशाप सहने के पश्चात्, स्वाधीनता के पचास वर्ष बीतने के बाद भी हमारी मानसिकता में कोई विशेष परिवर्तन आ नहीं पाया है।

अंग्रेजों ने कहा कि आपकी भाषाएं, आपका साहित्य पिछड़ा हुआ है। हमने सिर झुका कर स्वीकार कर लिया। हम यह सब भूल गये कि हमारा साहित्य कितना समृद्ध है। हमारे साहित्य और संस्कारों की जड़ें कितनी गहरी हैं। अंग्रेजों ने कहा 1857 में "सैनिक-विद्रोह" हुआ था, हमारे भारतीय इतिहासकार उसे पत्थर की लकीर मानकर लगभग सौ साल तक भारत की स्वाधीनता के पहले संग्राम को मात्र "गदर" कह कर ही प्रस्तुत करते रहे।

अब पश्चिमी दुनिया कहती है कि हम इक्कीसवीं सदी के द्वार पर हैं। तीन साल बाद हम एक नए युग में प्रवेश करेंगे, हमारे बुद्धिजीवी इसे भी स्वीकार लेते हैं, नतमस्तक होकर। जब कि यथार्थ यह है कि हमारे भारतीय कलेंण्डर के अनुसार इक्कीसवीं सदी में प्रवेश किए, हमें 53 वर्ष हो चुके हैं। इस समय विक्रमी संवत 2053 चल रहा है।

फिर भी आप पूछते हैं कि इक्कीसवीं सदी का साहित्य कैसा होगा, तो हमें उत्तर देना ही होगा।

आने वाले कल का साहित्य निःसन्देह आज के साहित्य से भिन्न होगा। चूंकि साहित्य समाज से उपजता है। अतः तब समाज की स्थिति आज से अलग होगी, अतः साहित्य में भी अवश्य बदलाव दीखेगा। हम अधिक यांत्रिक होंगे। हमारी जीवन-शैली में ही नहीं, सोच में भी परिवर्तन होगा। राजनीतिक समीकरण बदलेंगे। पश्चिम का प्रभुत्व शनैः-शनैः शिथिल होगा, उसकी रिक्तता को एशिया के कुछ राष्ट्र भरेंगे। चीन और भारत महाशक्ति के रूप में उभरेंगे, इसलिए तीसरी दुनिया की भाषाओं की ही नहीं, उन के साहित्य की महत्ता भी बढ़ेगी। संयुक्त राष्ट्रसंघ के संचालन में तीसरी दुनिया की भूमिका सब से उल्लेखनीय रहेगी।

आने वाले युग में उसी भाषा को महत्व मिलेगा, जो कम्प्यूटर के अधिक अनुकूल होगी यानी अधिक वैज्ञानिक होगी। इस कसौटी पर अंग्रेजी के मुकाबले में हिन्दी को प्राथमिकता प्राप्त होगी। इक्कीसवीं सदी के आरम्भ से ही यह दौर शुरू होगा और सन् 2050 तक हिन्दी विश्व की सब से प्रमुख भाषाओं में से एक होगी। देवनागरी-लिपि को अनिवार्य रूप से अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति मिलेगी।

साहित्य अधिक सुगम होगा। अधिक सार गर्भित। लिखने की अपेक्षा लोग उसे देखना अधिक पसन्द करेंगे। अभी से ऐसे कम्प्यूटर बनने लगे हैं, जिन में टाइप करने की

आवश्यकता नहीं होती, केवल बोल कर शब्द उन में स्वतः उभरते चले आते हैं। इस दृष्टि से रोमन लिपि की अपेक्षा देवनागरी अधिक आसान रहेगी, और सही भी। उसमें भूल की सम्भावनाएं नहीं के बराबर होंगी। जब कि अंग्रेजी अपने उच्चारण दोष के कारण, उसके अनुकूल नहीं रहेगी। इसलिए उसका प्रयोग उतना नहीं हो पाएगा, जितना देवनागरी का।

साहित्य का मूल स्वर कभी बदलता नहीं है। न शाश्वत मानव मूल्यों में ही विशेष परिवर्तन आता है। इसलिए दृष्टिगत एवं शैलीगत परिवर्तन अवश्यम्भावी होते हुए भी साहित्य की उपादेयता बनी रहेगी।

कागज पर किताबें कम छपेंगी। आज की तरह बड़े-बड़े पुस्तकालयों की अवधारणा समाप्त हो जाएगी। केवल कुछ फ्लापियों पर सारे पुस्तकालय सिमट जाएंगे। चूंकि कम्प्यूटर 'इण्टर नेट' से, सारे संसार के पुस्तकालयों से जुड़े रहेंगे। इसलिए विश्व की जिस पुस्तक को आप चाहेंगे, अपने कम्प्यूटर पर, अपने घर में बैठकर आराम से पढ़ सकेंगे।

सुबह समाचार-पत्र बांटने के लिए हॉकर आपके द्वार पर दस्तक नहीं देंगे। बल्कि कम्प्यूटर पर बटन दबाते ही, संसार की जिस भाषा के जिस समाचार-पत्र को आप चाहेंगे, आसानी से कम्प्यूटर पर पढ़ सकेंगे।

कागज का उपयोग पुस्तकों एवं समाचार-पत्रों में नहीं के बराबर होगा। करेंसी नोटों का चलन कम रहेगा। अधिकांश विनिमय "क्रेटेड-कार्डों" से होगा। और विश्व का सारा व्यापार कम्प्यूटरों के माध्यम से।

साहित्य केवल शब्दों तक सीमित न रह कर, दृश्य एवं श्रव्य से भी जुड़ जाएगा। मनुष्य की जीवन-शैली बदलेगी। सोच में बदलाव आएगा, उसी का प्रतिबिम्बन साहित्य में भी उभर कर आएगा।

राष्ट्र की परिभाषा बदलेगी। "राष्ट्र" शब्द सीमित अर्थ तक सीमित रह जाएगा। राजनीतिक सीमा-रेखाओं के बावजूद संसार के सभी देश एक दूसरे के इतने निकट आ जाएंगे, कि उन्हें एक दूसरे से भिन्न करके देख पाना कठिन होगा। अन्तर्राष्ट्रीय विवाह आम होंगे। धर्मों की संकीर्णताएं बंधन नहीं बन पाएंगी। स्वच्छन्द जीवन को उदारता की दृष्टि से देखा जाएगा।

साहित्य में इन सारे परिवर्तनों का प्रतिबिम्बन होगा। साहित्य, साहित्य-सा न लगने के बावजूद भी कहीं, साहित्य ही रहेगा।

—साहित्यकार के सामाजिक दायित्व क्या होंगे?

—साहित्यकार के संचार माध्यमों से जुड़ने के कारण, उसके शब्द किसी एक दायरे तक सीमित न रह कर, सर्वत्र सुलभ होंगे। इसलिए उसकी भूमिका व्यापक रहेगी। चूंकि समाज में उसके शब्द सहज रूप से सब के लिए उपलब्ध होंगे, अतः उसके लिखे हुए की महत्ता बनी रहेगी। सामाजिक परिवर्तन उसकी भागीदार अधिक से अधिक लोगों को प्रभावित करेगी। वैचारिक क्रान्तियों के लिए इस से अधिक अनुकूल परिस्थितियां भली कहां उपलब्ध होंगी। एक स्थान पर, एकान्त में बैठा एक अकेला व्यक्ति सारे विश्व को सम्बोधित कर, अपनी

उपस्थिति का अहसास जगा सकता है।

साहित्य, कला, विज्ञान-ये इतने घुल-मिल जाएंगे कि इन्हें अलग-अलग कर के देखना कठिन होगा। इसलिए साहित्यकार, वैज्ञानिक, इंजीनियर इनके बीच की सीमा-रेखाएं भी शिथिल हो जाएंगी।

वैज्ञानिक उपलब्धियां इतनी अधिक होंगी कि आज जिन समस्याओं से व्यक्ति जूझ रहा है, सम्भवतः तब वे नहीं रहेंगी। उनका स्थान कुछ दूसरी समस्याएं लेंगी। विकास और विनाश दोनों समानान्तर चलेंगे। उस स्थिति में बुद्धिजीवियों का दायित्व बहुत अधिक बढ़ जाएगा।

—मानवीय मूल्यों की आवश्यकता इस सदी के अन्त में कुछ ज्यादा ही महसूस की जाने लगी है। इक्कीसवीं सदी में इसकी क्या संभावना है?

—चूंकि तब भौतिक उपलब्धियां पराकाष्ठा पर होंगी, इसलिए मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन निश्चित ही होगा।

मनुष्य का सच्चा सुख मात्र भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं रह सकता। उसे वाह्य सुख-सुविधाओं के साथ-साथ आन्तरिक सन्तोष भी चाहिए, जीवित रहने के लिए। इसलिए मानवीय मूल्य, अध्यात्म, नैतिकता की अनिवार्य शर्तें उसके साथ-साथ चलेंगी। भौतिक साधनों के साथ-साथ नैतिक मूल्यों की आवश्यकताएं उसके लिए निरन्तर बनी रहेंगी। बल्कि यह भी असम्भव नहीं कि मानवीय मूल्य तब और अधिक मुखर होकर उभरें जब अन्धकार घनीभूत होकर उभरता है तो प्रकाश की आवश्यकता आवश्यकता से अधिक बढ़ जाया करती है।

—कौन से विषय साहित्य के केन्द्र में रहने की संभावना है? आम आदमी, खास आदमी, स्त्री-पुरुष, बच्चे, प्रवृत्ति, विज्ञान, व्यक्ति समाज या विश्व?

—तब जो समस्याएं सब से ज्वलन्त होंगी, वे ही बनेंगी, मानव की चिन्ता और चिन्तन का विषय। वैज्ञानिक चमत्कार अपने विकास के चरम बिन्दु पर होंगे। उसके अधिकांश कार्य स्वचालित/स्वनियंत्रित यंत्रों के माध्यम से होंगे। बिना अधिक प्रयास के, वह बहुत कुछ प्राप्त कर सकने में सफल होगा। आज की तरह विश्व में विषमता इतनी नहीं रहेगी। यह भी सम्भव है कि इतनी अधिक सुख-सुविधाओं से परेशान होकर, मनुष्य स्थायी शांति की खोज में अकेला ही प्रकृति की ओर लोटे। सृष्टि के अन्य प्राणियों की तरह, निःसर्ग के साथ घुल-मिल कर, एक सहज, सरल जीवन जिए और अति-संग्रह की प्रवृत्तियों से मुक्त होकर मुक्त जीवन की लालसा में नए क्षितिजों की खोज करे।

मानव-समाज की अंतिम नियति विनाश नहीं, विकास है। इसलिए इक्कीसवीं शताब्दी में विज्ञान और अध्यात्म, निर्माण और निसर्ग सब सह-अस्तित्व की भावनाओं से साथ-साथ चलेंगे। एक ऐसे विश्व का निर्माण होगा, जो अन्ततः "सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय" की भावना से प्रेरित होगा। उसकी वैज्ञानिक उपलब्धियों सब के हित के लिए होंगी। आखिर आदमी को अधिक चाहिए भी क्या?

सचमुच, आने वाला कल, बीते हुए कल की अपेक्षा अधिक सार्थक होगा। मनुष्य तब अपने साथ-साथ औरों के विषय में भी सोचेगा। क्योंकि उसकी नियति समस्त मानव-समुदाय की नियति से जुड़ी होगी। वह प्रकृति के महत्व को और अधिक गहराई से महसूस करेगा। फिर धरती पर हरियाली लौटेगी। नदियां और अधिक निर्मल होंगी। चूंकि मनुष्य को जीवित रहना है, अतः उसके लिए अनिवार्य होगा कि वह प्रकृति से तादात्म्य बनाए रखे, प्रकृति को भी जीवित रखे।

O

चिट्ठी पन्ना

कभी-कभी विश्वास करना नहीं हो पाता कि "शीराज़ा" जैसी पत्रिका अहिंदी भाषी प्रदेश से निकल रही है। हैदराबाद से प्रकाशित होने वाली, कल्पना और अजंता, कलकत्ता से नया समाज और विशाल भारत जैसी पत्रिकायें प्रकाशित होती थीं। अहिंदी प्रदेशों से जुड़े ये हिन्दी प्रकाशन मानक प्रकाशन थे। 'शीराज़ा' इसी परम्परा से जुड़ी है। सचमुच बधाई।

निर्मल पूर्णिया

हैदराबाद

इधर शीराज़ा के तीन अंक मेरे पास हैं सुबह की बैठक में इन्हें पढ़ता हूं। सुरुचि और कुशल संपादन सुख कर है। साहित्यिक पत्रिकाओं में इस पत्रिका की एक अपनी पहचान है। संपादकीय में आपका संक्षिप्त, संपुष्ट कथ्य वाकई सार्थक है।

मंजूर सुहेल सरगुजा

नागपुर, मध्यप्रदेश

अहिंदी भाषी प्रदेश से प्रकाशित शीराज़ा देखकर उम्मीद बंधी। सुन्दर निष्पक्ष और रोचक पत्रिका जो कम दाम में मंहगी पत्रिका है। पूरी पढ़कर विशिष्ट रसानुभूति प्राप्त हुई। मेरी शुभकामनायें।

चंद्रिका भटनागर

कटक उड़ीसा

शीराज़ा के दो अंक मिले। यही कोफ्त होती है कि सरकारी पत्रिकाएं कब की कब छपती हैं और कब की कब मिलती है। फिर भी बकौल गालिब "भूल जाता हूं सब सितम उसके वो कुछ इस सादगी से मिलता है।" मैं फिर उसका देर से आना भूल कर पढ़ने बैठ गयी। इस बार के अंक में जसविंदर शर्मा की "अब सो जा निक्कू" और हरदर्शन सहगल की "रोजी रोटी कथा रचनाएं" बहुत सुन्दर लगीं। आलेख भी बढ़िया है और एक टुकड़ा जिन्दगी में डॉ० अशोक जेरथ का खटोले पर उड़ना बहुत देर तक गुदगुदाता रहा।

डॉ० कामिनी बाली का कथ्य खंड भी सुन्दर है।

शुभकर्मा जाखड़ बरेली



इस अंक के रचनाकार

1. **निर्मला जोशी**
L-318 E-7
अरेरा कालोनी भोपाल

2. **राजकुमार कुंभज**
33 जवाहर मार्ग, इन्दौर-452002

3. **अवध बैरागी**
D-2/2 पेपरमिल कालोनी
लखनऊ-226006

4. **डॉ० सुषमा सरल**
संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

5. **मनोज शर्मा**
नबार्ड, शास्त्री नगर, जम्मू

6. **पृथ्वी नाथ महानोरी**
C/o मोती लाल सानी
गुर्जर ट्रस्ट छन्नी हिम्मत, जम्मू

7. **नवांग छिरिंग,**
कलचरल अकादमी
लेह, लद्दाख

8. **महाराज कृष्ण संतोषी**
दूर संचार विभाग
कच्ची छावनी, जम्मू

9. **जितेन्द्र शंकर बजाड़**
भीचोर 312022
जिला चित्तोड़गढ़, राजस्थान

10. **अनिला सिंह चाड़क**
केन्द्रीय विद्यालय, स्टाफ क्वार्टस
नं० 7, गोलमार्किट,
गांधी नगर, जम्मू

11. **शेख मुहम्मद कल्याण**
505/2 नटवाल पाई, सतवारी
जम्मू-180003

12. **देवव्रत जोशी**
24, वेदवव्यास कालोनी,
रतलाम-457001

13. **मोहन सपरा**
1345, रेलवे रोड
नकोदर-141310

14. **निर्मल विनोद,**
सुशील निवास, हरिसिंह नगर
कोटली बस्ती, जम्मू

15. **शिव रैना**
87, रघुनाथपूरा
जम्मू-180001

16. **अमरेन्द्र मिश्र**
गंगनांचल, नई दिल्ली

17. **जसविंदर शर्मा**
5060/1 केटेगरी III
मार्डन कमम्पलेक्स, मनीमाजरा
चंडीगढ़-160101

18. **अवतार कृष्ण रहबर**
द्वारा डॉ० ओंकार कौल
गंगोत्री
उत्तर प्रदेश

20. **श्रीपाद सुब्रह्मण्यम स्वामी**
C/o डॉ० विजय राघव रेड्डी
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
हेदराबाद-500007

21. **डॉ० विजय राघव रेड्डी**
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
हेदराबाद-500007

22. **रमेशचंद्र श्रीवास्तव**
L.I.U. माया बाजार
गोरखपुर-213001 (U.P.)

23. **डॉ० कीर्ति केसर**
1086/E गोबिंदगढ़
जालन्धर-144001

द्विमासिक

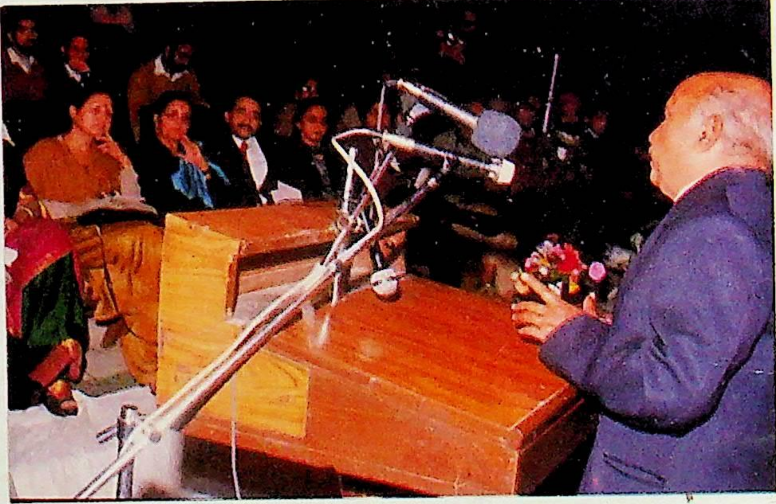
शीराज़ा

हिन्दी

Regd. No. 28871/76

April - May 1998

वर्ष : 34 अंक : 1 अप्रैल मई 1998





Published by the Secretary on behalf of J&K Academy of Art, Culture and Languages, Jammu and Printed at J.K. Offset Printing Press, 315-Gali Gariah, Jama Masjid, Delhi-110006.